सैंटर फॉर डिस्टैंस एंड आनलाईन ऐजुकेशन

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : एम.ए. भाग–1 *सैमेस्टर–1*

पत्र : पहला (हिन्दी काव्य–1) *एकांश संख्या : 1*

माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

1.1 विद्यापति

1.2 विद्यापति भक्त या श्रृंगारी कवि

1.3 कबीरदास

1.4 कबीर एक समाज सुधारक

Website : www.pbidde.org

हिंदी काव्य–1 (HINM2PUP-T-101)

सैंटर फॉर डिस्टेंस एंड ऑनलाइन ऐजुकेशन,तथा कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए **पूर्णांक : 100**

समय : 3 घण्टे
प्रतिशत : 40

लिखित परीक्षा : 70 अंक
आंतरिक मूल्यांकन : 30 अंक
पास अंक : लिखित में 28 अंक
आंतरिक में 12 अंक

उद्देश्य :–

1. विद्यार्थियों की भाषा एवं साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
2. विद्यार्थियों को आदिकाल व भक्तिकाल के कवियों के काव्य से परिचित करवाना।
3. हिन्दी भाषा के विभिन्न रूपों तथा शब्द भण्डार से परिचय करवाना।

अधिगम प्रतिफल

1. विद्यार्थी आदिकाल व भक्तिकाल की प्रवृत्तियों से परिचित होंगे।
2. विद्यार्थी आदिकाल व भक्तिकाल के कवियों से परिचित होंगे।
3. विद्यार्थियों का बौद्धिक और सामाजिक ज्ञान बढ़ेगा।

निर्धारित पाठ्य–पुस्तकें

(1) विद्यापति वैभव–(संपा) डॉ रामसजन पाण्डेय (प्रथम 25 पद) भवदीय प्रकाशन फैजाबाद

(2) कबीर–(संपा) हजारी प्रसाद द्विवेदी (1,2,3,5,8,11,12,13,16,20,22,24,26,27,30, 33,35,40,46,47,57,63,64,65,94 (कुल 25 पद),राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

(3) मलिक मोहम्मद जायसी, पद्मावत, कोई भी संस्करण, (केवल नागमती वियोग खण्ड)

छात्रों और परीक्षकों के लिए आवश्यक निर्देश

1. यह प्रश्न–पत्र तीन भागों में विभक्त होगा।
2. भाग–एक में पाठ्यक्रम में निर्धारित कृतियों में से व्याख्या से सम्बन्धित 'अथवा' रूपी विकल्प के साथ चार प्रश्न पूछे जाएंगे, जिनमें से विद्यार्थी को किन्हीं दो प्रश्नों का उत्तर देना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न में दो व्याख्याएं पूछी जाएंगी। प्रत्येक प्रश्न समग्र रूप से 12 अंकों का होगा। परीक्षक यह प्रश्न पूरे पाठ्यक्रम में से इस प्रकार पूछे कि विद्यार्थी को पूरे पाठ्यक्रम में से उत्तर देना अनिवार्य हो। अंक–12X2=24

3. भाग–दो में 'अथवा' रूपी विकल्प के साथ चार प्रश्न पूछे जाएंगे, जिनमें से दो का उत्तर देना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न 12 अंकों का होगा।

अंक–12X2=24

4. भाग–तीन में से पूरे पाठ्यक्रम में से 11 अनिवार्य प्रश्न पूछे जाएंगे। प्रत्येक प्रश्न दो (2) अंकों का होगा। अंक–11X2=22

अध्ययन के लिए सहायक पुस्तक सूची

1.	विद्यापति	–	डॉ. शिवप्रसाद सिंह
2.	कबीर साहित्य की परख	–	परशुराम चतुर्वेदी
3.	कबीर एक अनुशीलन	–	राम कुमार वर्मा
4.	जायसी	–	विजयदेव नारायण साही
5.	जायसी एक नई दृष्टि	–	डॉ. रघुवंश

पाठ संख्याः 1.1

लेखिका –डॉ0 कुलदीप कौर

विद्यापति

इकाई की रूपरेखा :

1.1.0 उद्देश्य
1.1.1 प्रस्तावना
1.1.2 विद्यापति का व्यक्तित्व और कृतित्व
1.1.3 विद्यापति की काव्यगत विशेषताएं
1.1.4 विद्यापति का शृंगार वर्णन
1.1.5 सप्रसंग व्याख्या
1.1.5.1 स्वयं जांच अभ्यास
1.1.6 सारांश
1.1.7 शब्दावली
1.1.8 प्रश्नावली
1.1.9 सहायक पुस्तकें

1.1.0 उद्देश्य :

प्रिय विद्यार्थियों आप इस पाठ में कवि विद्यापति से संबोधित जानकारी प्राप्त करेंगे :–

– विद्यापति के व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में जान पाएंगे।
– विद्यापति की साहित्यगत विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।
– विद्यापति के शृंगार वर्णन से परिचित हो पाएंगे।

1.1.1 प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य में विद्यापति को मैथिल–कोकिल के रूप में जाना जाता है। इन्होंने अपनी रचनाओं मे कृष्ण के लौकिक नायक रूप को प्रतिष्ठापित किया। कृष्ण–गोपी, राधा प्रेम लौकिक प्रेम का प्रेरक बना। मैथिली भाषा में रचित 'पदावली' विद्यापति की कीर्ति का स्तंभ है। इस रचना को लौकिक कृष्ण काव्य परम्परा की मुख्य रचना माना जाता है, इसी का प्रभाव मध्यकालीन कृष्ण काव्य पर पड़ा। प्रेम और सौन्दर्य के अमर गायक विद्यापति गीतिकाव्य परम्परा के आदि प्रवर्तक हैं।

1.1.2 विद्यापति का व्यक्तित्व और कृतित्व :

विद्यापति हिन्दी की उपभाषा मैथिली के ऐसे कवि हैं जिन्होंने कृष्ण के लौकिक नायक रूप का वर्णन अपनी रचनाओं में किया। इन्हें 'अभिनय जयदेव', 'कवि रंजन', 'कविशेखर' तथा 'मैथिल कोकिल' आदि उपाधियों से विभूषित किया गया। विद्यापति का जन्म मिथिला के दरभंगा जिले में हुआ। इनके पिता गणपति ठाकुर बहुत बड़े विद्वान थे। विद्यापति को अपने आश्रयदाता राजा शिवसिंह से विसपी नामक गांव मिला था। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान थे और धर्मशास्त्र तथा काव्य शास्त्र के भी पूर्ण ज्ञाता थे। उन्हें अनेक राजाओं के दरबारी कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त था। विद्यापति का संस्कृत, देसिल (अवहट्ठ) तथा मैथिली भाषा पर पूर्ण अधिकार था। इनकी तीन रचनाएं प्रसिद्ध हैं–कीर्तिलता, कीर्तिपताका और विद्यापति पदावली। मैथिली भाषा में 'रचित पदावली' इनकी कीर्ति का स्तम्भ है।

विद्यापति दरबारी कवि होते हुए भी जनकवि है, श्रृंगारिक होते हुए भी भक्त है, वैष्णव होते हुए भी धर्म–निरपेक्ष है। संस्कारी ब्राहम्ण होते हुए भी रूढ़ि ग्रस्त नहीं हैं। वे श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण और राज्यसिद्वान्त के ज्ञाता थे। उनकी रचना 'कीर्तिलता' एक राजप्रशस्ति काव्य है जिसमें कीर्ति सिंह के राज्यप्राप्ति के प्रयत्नों का वर्णन है। विद्यापति सौन्दर्य के कवि हैं। सौन्दर्य उनका दर्शन है और यही उनकी जीवन दृष्टि है। वे सौन्दर्य के स्रष्टा भी थे और उसके उपभोक्ता भी थे। 'विद्यापति पदावली' के अधिकांश पद राधा एवं कृष्ण के प्रेम के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करते हैं। इसकी भाषा प्राचीन मैथिली है जिस पर बृजभाषा का प्रभाव है। इसके गीत अपनी रागात्मकता और मार्मिकता के लिए प्रसिद्व है और ये लोक जीवन के अत्यन्त निकट हैं। ये गीत अत्यन्त सहज और स्वाभाविक हैं और पूर्णतया लोक चेतना से प्रभावित हैं। इस रचना में प्रकृति का चित्रण

अलंकरण के रूप में हुआ है। राधा–कृष्ण के प्रेम–प्रसंगो की लीला भूमि के रूप में प्रकृति नाना रूप तथा रंगों में उपस्थित हुई हैं।

'मैथिल कोकिल' कहे जाने वाले महान कवि विद्यापति को मूलतः शृंगार रस का कवि माना जाता है और मुख्य रूप से वे संयोग पक्ष के सिद्धहस्त कवि है। यौवन, सौन्दर्य और रति का जैसा विलक्षण वर्णन उनके काव्य में हुआ वह अपनी मिसाल आप है। पदावली में नख–शिख वर्णन, नायक–नायिका भेद, हाव–भाव, अभिसार तथा मिलन के तत्वों का अद्वितीय वर्णन है। वियोग शृंगार के वर्णन में भी वे सफल रहे है। पदावली में राधा–कृष्ण के विरह का भी सूक्ष्म वर्णन है जो अपनी विभिन्न अवस्थाओं अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलय, उन्माद, जड़ता, व्याधि और मरण आदि में चित्रित हुआ हैं।

1.1.3 विद्यापति की काव्यगत विशेषताएं :

यहां विद्यापति के काव्य की प्रमुख विशेषताओं पर विचार किया जा रहा है–

1. **शृंगारी कवि –** विद्यापति घोर शृंगारी कवि है। उनके द्वारा किया गया राधाकृष्ण प्रेम–चित्रण केवल शृंगारी हैं। उसमें भक्ति और अध्यात्म की मात्रा कम हैं। विद्यापति राजदरबार कवि और संसारी थे। वह भक्त नहीं थे और उन्होने भक्ति या कीर्तन के लिए काव्य रचना नहीं की। उनकी कविता का उद्देश्य अपने आश्रयदाता का विलासपूर्ण शृंगार वर्णन द्वारा मनोरंजन करना था उनके समस्त पदों में केवल चार–पांच पद ही ऐसे हैं जिसमें भगवान कृष्ण के प्रति आस्था प्रकट की गयी है। वे सौन्दर्य एवं विलास सौन्दर्य के उपभोग से सम्बन्धित है। कवि ने नारी के अंग–प्रत्यंग का मादक वर्णन किया है। रूप चित्रण अलंकारिक है। नायिका नवोढ़ा किशोरी है। नायिका का रूप 'अपरूप' है। उसका यह रूप असाधारण और प्रभावकारी है। विद्यापति का यह प्रेम–वर्णन न तो रोमांटिक वायवीय प्रेम है और न भक्तों की तरह दिव्य है। वे अपरूप के कवि है जिसमें तल्लीनता और अतृप्ति की गहरी क्षमता है। यह अपरूपता राधा तथा कृष्ण दोनों में है। राधा का अपरूप रूप कामदेव के लिए मंगलदाता है जिसमें बड़ा तीव्र रूपाकर्षण है जो आगे चलकर मंगल केलि से जुड़ जाता है। दो अपरूपों का परस्पर आकर्षण ही प्रेम है और कृष्ण भी राधा की प्रतीक्षा में लीन है। विद्यापति नखशिख, दूती–प्रसंग और अभिसार का वर्णन पारम्परिक ढ़ंग से करते हैं। विद्यापति के

विरह वर्णन में अदभुत संयम है। पदावली सामंती विलास को प्रज्वलित करने वाली रचना है। विद्यापति के गीत मिथिला में गाए जाते है जो सामान्य गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित है। मैथिली की मिठास, लोकधुनों का समावेशन और उनकी तन्मय करदेने की क्षमता के कारण पदावली एक लोकप्रिय रचना है। विद्यापति की रचनाओं में एक खुलापन है, साहस है, सौन्दर्योपभोग की ललक है और रूपदर्शन की अतृप्त प्यास है।

विधापति ने नायक कृष्ण का स्वतंत्र रूप–चित्रण विशेष नहीं किया पर राधा की रूपासक्ति के वर्णन में कृष्ण के रूप–लावण्य की सुन्दर झलक प्रस्तुत की है। विद्यापति के श्रृंगार–प्रेम का आधार यही रूप वर्णन है। यही रूपासक्ति पूर्वराग बन जाती है। लोकलाज के भय से नायक–नायिका का मिलन कठिन हो जाता है। इसके लिए दूति नियोजित की जाती है। विद्यापति के काव्य में चित्रित स्थूल उपभोग कई स्थानों पर सीमा से बढ़ जाता है जिससे जीवन की स्वस्थ प्रेरणाएं एवं उदात्त भावनाएं जागृत नहीं हो सकती।

2. **वियोग वर्णन** – विद्यापति के काव्य में संयोग वर्णन अधिक है परन्तु साथ ही वियोग वर्णन भी मिलता है। विरह वर्णन में कवि ने ऋतु वर्णन और बारहमासा का वर्णन किया है। आषाढ़ की घटा और सावन की वर्षा प्रिय के बिना भयावह प्रतीत होती है। विरह वर्णन में आशा, निराशा, अभिलाषा, दीनता, पश्चात्ताप, विषाद, उन्माद, जड़ता और व्याधि आदि अनेक भाव–दशाओं तथा परिस्थितियों का चित्रण हुआ है और विरह का पर्यवसान मिलन में ही किया है।

   विद्यापति वीर कवि, भक्त कवि और विशेषतया एक श्रृंगारी कवि के रूपों में परिपूर्ण दिखाई देते हैं। एक ओर उनकी कीर्तिलता और कीर्तिपताका चारण काव्य की वीरगाथाओं का स्मरण दिलाती है और दूसरी तरफ उनकी पदावली कृष्ण कवियों तथा रीतिकालीन कवियों की श्रृंगारपरक सुकोमल भाव सामग्री की मूल प्रेरक सिद्ध होती है। विद्यापति हिन्दी साहित्य में पदशैली के प्रवर्तक और सूरदास के पथ–प्रदर्शक जान पड़तें हैं। इनमें भाषा की सुकुमारता और भाव मधुरिमा का मणि–कांचन योग है। विद्यापति अपने समय के बड़े सफल कवि हैं। उन्होंने मध्ययुग के लगभग पूरे काव्य को प्रभावित किया।

3. **भाषा शैली–** विद्याापति उच्चकोटि के कलाकार, संगीतज्ञ और रसिक कवि थे। विद्यापति पदावली का कलापक्ष भावपक्ष से भी बढ़ा–चढ़ा है। इसके भावरस में एक रूपता मिलती है। इसमें सर्वत्रश्रृंगार का सीमित रूप है परन्तु कलापक्ष में विविधता है। विद्यापति की कलात्मक अभिव्यंजना

का प्रमुख साधन है अलंकार सभी प्रकार के शब्दालंकारों का सुन्दर प्रयोग है कई अलंकार इस प्रकार गुंथे हुए है जैसे अभूषणों में मोती। अलंकारों के सुन्दर प्रयोग के कारण भाषा में प्रवाह, माधुर्य और संगीतात्मकता के गुण आ गए हैं। इनकी मैथिली भाषा में ब्रजभाषा जैसा कोमल माधुर्य मिलता है। इनकी अलंकार–योजना में मौलिकता है। इनकी कविता में लोकगीत परम्परा और साहित्यिक गीत–शैली दोनों का समावेश है। विद्यापति की भाषा में लोकोक्तियों का साहित्यिक रूप मिलता है। इनके काव्य में मानवीकरण का प्रयोग खूब मिलता है। विद्यापति ने लोकप्रचलित सरसता प्रदान करके हिन्दी साहित्य में काव्य–भाषा–निर्माण का कार्य किया। उनका यह निर्माण कार्य अत्यन्त मौलिक है। प्रसाद और माधुर्य से ओत–प्रोत उनकी भाषा में सरलता, स्वाभाविकता, संगीत माधुर्य, प्रवाह, कोमलता आदि अनेक गुण हैं। विद्यापति ने न केवल भाषा को कोमल–मधुर बनाया, अपितु लाक्षणिक प्रयोगों, बिम्ब–योजना, अलंकरण और संगीतमय पदबद्धता आदि से उसे शक्ति–सम्पन्न बना कर खूब समृद्ध भी किया। विद्यापति एक बहुत बड़े शब्द–शिल्पी थे। उन्होंने न केवल अलंकार चमत्कार का अनूठा शब्द–चयन किया, बल्कि भाव, विषय वस्तु और प्रसंग के अनुकूल उपयुक्त शब्दों का भी प्रयोग बड़ी कुशलता से किया। इनकी भाषा में चित्रोपमता भी खूब है। विद्यापति की काव्य कला अत्यन्त समृद्ध है। अलंकारों, मुहावरों–लोकोक्तियों, लाक्षणिक प्रयोंगों, विशेषणों और उपयुक्त शब्द चयन आदि से उन्होनें अपनी भाषा को पूर्ण व्यंजक एवं कलात्मक बनाया। वास्तव में विद्यापति एक बहुत बड़े कला–साधक थे।

1.1.4 विद्यापति का शृंगार वर्णन :

कवि विद्यापति को प्रेम और सौन्दर्य का अमर कवि कहा जाता है। जयदेव की 'गीत गोविन्द' की तरह ही विद्यापति ने राधा–कृष्ण के 'सौन्दर्य का वर्णन 'पदावली' में किया है। उनकी कविता में राधा कृष्ण के रूप में 'स्वस्थ तरुण–तरुणियों के यौवन की शृंगारी प्रेम लीलाओं के एक से एक सुन्दर और मधुर गीत गाये गये हैं। शृंगार रस को भारतीय काव्यशास्त्र में रसराज कहा जाता है। इसके रसराजकत्व का मूल कारण सभी रसों का इसमें समाहित हो जाना है। यह रस मानव जीवन की मूल भावना (काम) का इतना मनमोहक चित्र प्रस्तुत करता है कि प्रत्येक व्यक्ति इसके सौन्दर्य का पान करके प्रसन्न महसूस करता है। इस रस के अन्तर्गत नायक–नायिका के आपसी संबंधों और भेदों का वर्णन किया जाता है और नारी सौन्दर्य इसके केन्द्र में रहता है। कवि विद्यापति ने शृंगार रस का विस्तारपूर्वक वर्णन काव्यशास्त्रीय पद्धतियों के अनुरूप किया है। नायिका के सौन्दर्य

का कामप्रेरक वर्णन करने में कवि ने अपनी कला प्रतिभा का अपूर्ण परिचय दिया है। इसके लिए उसने अलंकारिक शैली का प्रयोग किया है। कवि की नायिका नवौढ़ा किशोरी है उसमें वयः संधि का सद्यः संचार हुआ है। उन्होंने राधाकृष्ण को परस्पर आलम्बन और आश्रय बनाकर, उद्दीपन और संचारियों के अनुरूप अनुभावों का सजीव चित्रण किया है। बचपन से किशोरावस्था में प्रवेश करती हुई नायिका के सौन्दर्य का उदाहरण देखिए –

''सैसव यौवन दुहु मिलि गेल, स्रवनक पथ हुए लोचन गेल।
बचनक चाबुरि लहु–लहु हास, धरनिए चाँद कएल परगास।
मुकुर लई अब करई सिंगार, सबि पूछइ कई से सुरत–बिहार।
निरजन उरज हेरइ कत वेरि, हंसइ से अपन पयोधरि हेरि।
पहिल बदरि सम पुन नवरंग, दिन–दिन अनंग अगोरल अंग नम।
माधव पेखल अपरूप बाला, सैसव यौवन दुहु एक भेला।''

काव्यशास्त्र में 'रति' को शृंगार रस का स्थायी भाव बताया गया है। 'रति' उस भावना, कामना और अनुभूति को कहते हैं जिसके वशीभूत होकर नायक–नायिका इन्द्रिय अथवा शारीरिक सुख का भोग करना चाहते हैं। 'रति' स्थायी भाव की परिपक्वावस्था ही शृंगार रस कहलाती हैं। शृंगार रस के संयोग और वियोग दो पक्ष हैं। शृंगार के संयोग पक्ष में प्रथम दर्शन से लेकर मिलन तक के अनेक प्रसंगों की व्याख्या की जाती है। संयोग वर्णन में आलम्बन के सौंदर्य का बहुत महत्व होता है। इस दृष्टि से राधा का किया गया निम्नोक्ति वर्णन द्रष्टव्य है :–

पीन पयोधर दूबरि गता। मेरु जयजल कनक लता।
ए कान्हु ए कान्हु तोरि दोहाई। अति अपरूब देखत साई।।
मुख मनोहर अधर रंगे। फूललि मधुरी कमल संगे।
लोचन जुगत भंग अकारे। मधुप मातल उड़ए न पारे।।
भउंहक कथा पूछह जनू। मद जोड़ल काजर धनू।
भन विद्यापति दूति बचने। एत सुनि कान्हि कयल गमने।।

अर्थात् नायिका की कनकलता सी देह हैं–पतली, दुबली। उस पर सुमेरु पर्वत पीन–पयोधर! दुहाई है। ऐसा अपूर्ण रूप है। मनोहर मुख पर लाल–लाल होंठ ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कमल के साथ लाल–लाल माधुरी फूल खिले हों। दोनों नेत्र भौरों जैसे हैं, जो मुख कमल के मधुपान में मस्त हैं।

भौहों की बात–मत पूछो, कामदेव ने काजल की डोर से अपना धनुष जोड़ा है। राधा के शारीरिक सौन्दर्य के पश्चात् उसके प्रथम मिलन की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य हैं –

कुंज भवन सयं निकसल रे, रोकल गिरधारी।
एकहि नगर बस माधव रे, जानिकर बरनारी।
छाँड कन्हैया मोर आँचर रे, फाटत नववारी।
अपजस होएत जगत भरि ई, जनि करइ उधारी।

नायिका का अनुपम सौंदर्य नायक के हृदय में रति के भाव को जागृत करता है। नायिका साधारण नहीं अनुपम सुन्दरी है, हरिण नयनी राधा है, रमण कला में प्रवीण रागा है। एकान्त उद्दीपन का कार्य करता है। हाथ पकड़ना, विनती करना, सुखद स्पर्श और संभाषण कायिक अनुभाव, लज्जा, थर–थर काँपना सात्विक अनुभाव हैं। मदन सिंहासन पर आरोहण करके भय गढ़ को तोड़ देने में अनेक संचारियों का आरोप हो गया है –

हरि कर हरिनि–नयन तन सौंपलि
सखिगन गेलि आन ठाम।
अवसर पाइ धनि कर धरि नागर
विनति करए अनुपाम।
हरिनि नवयनि धनि रामा
कनुक सरस परस संभाषन।
मेटल लाजक धामा।

शृंगार वर्णन में नायक–नायिका के परस्पर संबंध, मिलन आलिंगन और रति क्रीड़ा का वर्णन होता है। कवि ने नायक से मिलने के पूर्व नायिका के सजने–संवरने का सजीव चित्रण किया है। राधा को उसकी सखियां कृष्ण मिलन के पूर्ण समझाती हैं कि कृष्ण के समीप जाने से पहले अच्छी तरह शृंगार करना, एक दम स्वयं को समर्पित नहीं करना, ज्यादा बोलना नहीं, अपनी लज्जा को बनाए रखना।

प्रथमहि अलक तिलक लेव साजि, चंचल लोचन काजर आंजि।
मान करब किछु दरसब भाव। रस राखव ते पुन–पुन आव।
हमकि सिखाओबि अओ रस रंग। अपनहि गुरु भए कहत अनंग।

प्रथम समागम के उपरान्त राधा का बड़ा ही सुन्दर चित्रण कवि विद्यापति ने किया है। नायक का नायिका को स्पर्श करना, नायिका का कमल की भांति कुम्हला जाना, आँखों में आँसुओं को झरना; थर–थर काँपना इत्यादि अनेक स्थितियों के चित्र कवि ने बड़ी ही सजीवता के चित्र खींचे है। मुग्धा नायिका के विभिन्न भावों का सुन्दर अंकन मिलता है। संयोग वर्णन में कवि प्रेमोल्लास की भी सुन्दर व्यंजना की है। प्रिय मिलन की उक्तियों में राधा के हृदय के सौन्दर्य को व्यक्त किया गया है राधा सखियों से कहती है कि प्रिय के मिलते हैं मेरे सारे दुख दूर हो गए। उसके आलिंगन से विरह का सारा दुख भूल गई। वह प्रेम में इतनी विह्वल है कि अपनी प्रसन्नता के लिए उनके शब्द नहीं है :–

'कि कहत हे सीखि आनन्द ओर
चिर दिने माधव मंदिर मोर।'

संयोग वर्णन के अन्तर्गत 'अभिसार' वर्णन भी आता है। कवि नायिका के मार्ग में आने वाले– बाधक और साधक सभी प्रकार की स्थितियों का मार्मिक वर्णन किया है। प्रायः अभिसार की दृष्टि से दो प्रकार की नायिकाएं होती है – कृष्णाभिसारिका और शुक्लभिसारिका। जो रात के अन्धकार में अपने नायक को मिलने जाती है। उसे कृष्णाभिसारिका और जो चाँदनी रात में घर से दूर प्रियतम को मिलने जाती है उसे शुक्लाभिसारिका कहलाती है। कृष्णाभिसारिका का उदाहरण देखिए –

गगन अब घन मेह दारुन सघन दामिनि झलकई।
कुलिस पातन सबद झनझन पवन खरतर बल गई।
सजनी आजु दुरदिन भेल।

शुक्लाभिसारिका की उदाहरण –

सखि हे, आज जायब मोहि।
घर गुरुजन डर न मानव बचन चूकब नाहिं।।
चानन आनि–आनि अंग लेपब भूषन क गजमोति।

इस प्रकार संयोग शृंगार के विविध पक्षों का सुन्दर और सजीव वर्णन किया है। विद्यापति ने नायक और नायिका के रूप सौन्दर्य और कार्य व्यापारों का एक साथ वर्णन करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

वियोग वर्णन –

जिस प्रकार जीवन की सम्पूर्णता सुख–दुःख के मधुर मिलन में होती है उसी प्रकार शृंगार भी संयोग और वियोग के संगम से पूर्ण होता है। यही वजह है कि शृंगार रसों में से सर्वप्रथम आता है। विद्यापति की पदावली में अधिकांश संयोगावस्था का ही वर्णन है परन्तु कहीं–कहीं वियोग का वर्णन भी मिलता है। आरम्भिक पूर्व राग दशा, मान, प्रिय की बेवफाई का दुःख, रति कलह आदि ऐसी ही स्थितियाँ हैं। विद्यापति के विरह वर्णन का आरम्भ प्रिय के परदेश गमन से आरम्भ होता है। प्रिय के विदेश जाने के विषय नायिका जब अचानक सुनती है तो वह बेचैन और विह्वल हो उठती है। विदेश जाते हुए प्रियतम को वह कहती है हे प्रिय! तुम विदेश न जाओ। हमारा सब रागरंग समाप्त हो जाएगा। तुम पहले भी कई बार मुझे भुलाकर पर नारी के मोह में फंस जाते हो जब विदेश चले जाओगे तो क्या होगा? मैं तुझसे कोई हीरा–चांदी नहीं मांगती, केवल तुम्हारी वापसी चाहती हूँ। नारी हृदय की दीनता, अशंका, दुःख आदि भावनाओं को इस पद में देखा जा सकता है–

माधव तोहे जनु जाह विदेस।
हमरो रंग रभस लए जएबह कोन संदेस।।
बनहि गमन करु होएसि दोसर मति, बिसरि जाएवपति मोरा।
हीरा मनि मानिक एको नहि माँगव, फेरि माँगव पहु तोरा।।
पहु संग कामिनि बहुत सोहागिनि, चंद निकट जइसे चकोरा।

नायिका, नायक के विदेश चले जाने पर बहुत दुःखी होती है क्योंकि उसका यौवन व्यर्थ चला जाएगा, वह बार–बार यही सोचती है; जोबन बिनु तन, तन बिनु जोबन की जोबन पिय दूरे।' फूलों पर मंडराते हुए भंवरे, कोयल की कुहू–कुहू, हलदी, चंदन कुकंम आदि के लेप, कुछ भी उसे अच्छा नहीं लगता। अपने पिय के राह देखते–देखते उसके नाखून घिस जाते हैं और आँखें अंधी हो जाती है :–

हृदय मोर बड़ा दारुन रे, पिया बिनु बिहरि न जाए।
एक सयन सखि सूतल रे, आछल बालम निस मोर।
सून सेज हिय सालए रे, पिया बिनु घर आजि।

विद्यापति के काव्य में विरह की सभी दशाओं का उल्लेख मिलता है – अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण–कथन, उद्वेग, प्रलाप उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्च्छा, मरण। इन सभी दशाओं में विरहिणी की अर्न्तवेदना का उल्लेख बड़ी मार्मिकता के साथ हुआ है।

जैसे अभिलाषा में प्रियतम से मिलने की इच्छा होती है – मन करे तहाँ उड़ि जाइअ जहाँ परि पाइअ रे। कभी अपने यौवन के व्यर्थ चले पर चिंता प्रकट करती है–इ नव यौवन विरह गमाओब कि करम से पिया गेहे। कभी पिया के साथ गुज़ारे पलों को स्मरण करती है, ''एक सयन सखि सूतल रे आछल बालम निसि मारे; कभी अपने पिय को गुणों का गान करती हुई कहती; 'मधु सम बचन कुलिस सम मानस', बहुत ज्यादा दुःखी होती हुई अपने उद्वेग को 'सून सेज हिअ सालए रे' कहकर व्यक्त करती है। इतना ही प्रिय के वियोग में वास्तविक स्थिति का ज्ञान ही नहीं और प्रलाप की दशा में कहती है– अनुखन राधा–राधा रटइत, आधा–आधा बानि। नायिका पिय वियोग में दुबली–पतली हो जाती है, अंगों में जड़ता आती है, मूर्च्छित होकर मरणावस्था तक पहुँच जाती है।

इस प्रकार विद्यापति ने पदावली में शृंगार वर्णन के संयोग और वियोग वर्णन के मर्म स्पर्शी चित्र उकेरे हैं। विद्यापति का शृंगार वर्णन शास्त्रीय पद्धति पर होते हुए भी भाव–प्रधान अनुभूतिमय और सरस है। उनमें पाठकों को रसमग्न करने की पूरी शक्ति विद्यमान है। नायक–नायिका के मानसिक उथल–पुथल के चित्रों ने, आन्तरिक उल्लास–विरह वेदना, आशा अभिलाषा की मर्मस्पर्शी अनुभूति ने विद्यापति के शृंगार को शास्त्रीय नीरसता से बचाकर मर्मबोधक बना दिया है।

1.1.5 सप्रसंग व्याख्या :

1. देख देख राधा.....अहोनिसि कोर अगोरि।

व्याख्याः प्रस्तुत पद्यांश में कवि विद्यापति ने राधा की अनुपम सौन्दर्य को रेखांकित किया है। कवि कहता है देखिए राधा के अद्वितीय सौन्दर्य को देखिए। विधाता ने समस्त संसार के सौन्दर्य को मिलाकर राधा की रचना की है। अर्थात् राधा अपरूप है। राधा के सौन्दर्य को देखकर कामदेव भी मूर्च्छित हो जाते हैं। जो कृष्ण करोड़ों कामदेवों को मथित कर सकते हैं वह भी राधा के सौन्दर्य देखकर गिर पड़ते हैं। राधा के दिव्यमयी सौन्दर्य को देखकर दूसरी सुन्दर स्त्रियाँ भी अपना–आप न्योछावर कर देती हैं और म नही मन यह इच्छा करती हैं कि राधा के चरण–कमल रात–दिन हमारी गोद में ही सुरक्षित रहें।

विशेष : 1. राधा के दिव्य सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

2. सखि हे हमर दुखनि नहि ओर.....दिन रातिया।

व्याख्या : प्रस्तुत कवितांश में कवि ने बारहमाह में से भादो का वर्णन किया है। कवियों द्वारा बारहमाह में से भादों का वर्णन किया है। कवियों द्वारा बारहमाह रचना के द्वारा वियोगिनी के विरह दशा का वर्णन किया जाता है। इस पद्य में भी बिजली की चमक–दमक किस तरह विरह व्यथित राधा की पीड़ा को और दु:खदायी बना देती है। राधा कहती है हे सखी! मैं बारिश के मौसम में बिल्कुल अकेली हूँ। बादल लगातार गर्जन कर रहे हैं और बरस रहे हैं। ऐसे समय में मेरा प्रियतम विदेश में है और कामदेव तीक्षण वाणी से मुझे मार रहा है। मयूर नाच रहे हैं, मेंढ़क और जलमुर्गी के आवाज़ें सुनकर मेरा कलेजा फटा जा रहा है। सारी दिशाएँ अंधकार से भरी है बिजली चमक रही है। विद्यापति कहते हैं कि श्रीकृष्ण के बिना मैं दिन रात कैसे बिता सकूँगी।

विशेष :

1. वर्षा का स्वाभाविक रूप वर्णन है।
2. राधा के विरह का मानसिक वर्णन है।

1.1.5.1 स्वयं जांच अभ्यास

1. विद्यापति को भक्त कवि क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

1.1.6 सारांश

विद्यापति का पूरा नाम विद्यापति ठाकुर था। विद्यापति को प्रेम और सौन्दर्य का कवि कहा जाता है। इनके पदों में राधा कृष्ण के प्रेम को लौकिक रूप में दिखाया गया है। इनकी भाषा मूलतः मैथिली होने के बावजूद उसमें ब्रज भाषा जैसी कोमलता देखने को मिलती है। विद्यापति के सभी पद मात्रिक सम छंद में लिखे गये हैं।

1.1.7 शब्दावली

1. विभूषित – अलंकृत
2. क्षमता – योग्यता
3. तन्मय – लीन, व्यस्त

4. माधुर्य – मिठास

5. समीप – पास

1.1.8 प्रश्नावली

1. 'पदावली' की भाषा पर टिप्पणी करें।
2. विद्यापति की रचनाओं के विषय में लिखें।
3. विद्यापति के शृंगार वर्णन पर विचार करें।
4. विद्यापति को साहित्यगत विशेषताओं पर विचार करें।
5. मुक्तक काव्य परम्परा में विद्यापति के स्थान को निर्धारित कीजिए।

1.1.9 सहायक पुस्तकें :

1. विद्यापति एक तुलनात्मक समीक्षा : जयनाथ नलिन
2. विद्यापति : शिवप्रसाद सिंह
3. विद्यापति : डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित

पाठ संख्याः 1.2

लेखिका –डॉ0 कुलदीप कौर

विद्यापति भक्त या शृंगारी कवि

इकाई की रूपरेखा :

1.2.0 उद्देश्य
1.2.1 प्रस्तावना
1.2.2 विद्यापति भक्त या शृंगारी कवि
1.2.2.1 रहस्यवादी कवि
1.2.2.2 भक्त कवि के रूप में
1.2.2.3 शृंगारी कवि के रूप में
1.2.2.4 स्वयं जांच अभ्यास
1.2.3 सारांश
1.2.4 शब्दावली
1.2.5 प्रश्नावली
1.2.6 सहायक पुस्तकें

1.2.0 उद्देश्य

1. प्रस्तुत पाठ के अंतर्गत पाठक विद्यापति के भक्त या शृंगारी कवि होने की जानकारी प्राप्त करेंगे।
2. प्रस्तुत पाठ में विद्यापति की भक्ति भावना की जानकारी प्राप्त करेंगे।
3. इस पाठ के अंतर्गत विद्यापति के शृंगारिक प्रेम की जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.2.1 प्रस्तावना

मैथिल कोकिल विद्यापति का व्यक्तित्व विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं का स्तंभ है। संक्रमणकाल के रचनाकार होने के कारण उनके शृंगार और भक्ति दोनो का सम्मिश्रण मिलता है। विद्यापति दरबारी होते हुए भी जनकवि हैं और शृंगारी होते हुए भी भक्त कवि हैं। विद्यापति को एक ओर रीतिकालीन कविता का कवि मान सकते हैं और दूसरी ओर उन्हें भक्तिकाल का प्रथम कवि मान सकते हैं।

1.2.2 विद्यापति भक्त या शृंगारी कवि

विद्यापति एक भक्त कवि थे या शृंगारी इस विषय को लेकर विद्वानों के विचारों में भिन्नता है। एक वर्ग उन्हें रहस्यवादी कवि स्वीकार करता है तो दूसरा वर्ग कृष्ण सहित विभिन्न देवी–देवताओं का उपासक सगुण भक्त। तीसरे वर्ग के मत वे विशुद्ध शृंगारी कवि हैं।

1.2.2.1 रहस्यवादी कवि

पदावली में रहस्यवादी संकेतों को मानने वालों में डॉ0 ग्रियर्सन सर्वप्रमुख हैं। उनके मत राधा तथा कृष्ण क्रमशः जीवात्मा और परमात्मा के प्रतीक कहे जा सकते हैं। राधा रूपी जीवात्मा कृष्ण रूपी परमात्मा से मिलने के लिए प्रयासरत है। उसका यह प्रयास पूर्ण मिलन तक निरन्तर चलता रहता है। आत्मा मोह–माया के पाश में बंधी होने के कारण ईश्वर पहचान नहीं सकती। अतः उसे ईश्वर की ओर प्रेरित करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। पदावली में दूती गुरु का प्रतीक कही जा सकती है।

ग्रियर्सन के अतिरिक्त बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त व जनार्दन मिश्र जैसे विद्वान भी विद्यापति को रहस्यवादी मानते हैं। मिश्र जी का कहना है– ''विद्यापति के समय में रहस्यवाद का मत जोरों पर था। उसके प्रभाव से बचकर निकालना और किसी निष्कंटक मार्ग का अवलम्बन करना इन्हें शायद अभिष्ट न था; अथवा अभीष्ट होने पर भी तुलसीदास की तरह अपने वातावरण के विरुद्ध जाने की शक्ति इनमें न थी। इसीलिए स्त्री और पुरुष के रूप में जीवात्मा और परमात्मा की उपासना की जो धारा उमड़ रही थी उसमें इन्होंने अपने को बहा दिया।''

अपने मत की पुष्टि में मिश्र जी ने निम्नलिखित पंक्तियां प्रस्तुत की है।

एक दिन छलि नवनीत रे, जलमिन जेहन पिरीत रे।
एकहि वलेन विच भेल रे, हंसि पहु उतरी न देल रे।

एकहि पलंग पर कान्ह रे, मोर चख दूर देस भान रे।

मिश्र जी के अनुसार यहां जीवात्मा के अहं तथा ग्लानि का चित्र अंकित किया गया है। पलंग शरीर का प्रतीक है और वहां जीवात्मा के रूप में परमात्मा का निवास है। अज्ञानी जीव इस बात बात को नहीं जानता और परमात्मा को अपने से दूर समझता है। मिश्र जी विद्यापति को रहस्यवाद से प्रभावित भी मानते है।

1.2.2.2 भक्त कवि के रूप में

विद्वानों का एक वर्ग विद्यापति को सगुणोपासक कृष्ण भक्त भी मानते हैं। इस वर्ग में प्रोफैसर बिमनबिहारी मजुमदार तथा बाबू श्याम सुन्दर दास को विशेष रूप में गिना जा सकता है। उनके मत में पदावली के अन्तर्गत राधा कृष्ण से सम्बन्धित पदों में माधुर्य भाव की भक्ति दृष्टिगोचर होती है। श्रीमद्भागवत इत्यादि में भक्ति के इसी रूप को आदर्श स्वीकार किया गया है। विद्यापति ने वैष्णव परम्परा में स्वीकृत राधा–कृष्ण के लीलारूप को ही अपनी भक्ति का आधार बनाया है। बाबू श्याम सुन्दर दास विद्यापति की भक्ति भावना पर विष्णु स्वामी और निम्बाकाचार्य का प्रभाव मानते हैं। उनके विचार से विद्यापति ने राधा–कृष्ण के प्रेम मिलन व विरह आदि के वैसे ही भावपूर्ण चित्र खींचे हैं जैसे कि भक्तिकाल के अन्तर्गत महाकवि सूरदास थे। विद्यापति इसी भावना के कारण चैतन्य महाप्रभु जैसे वैष्णव भक्तों ने विद्यापति के पदों को कीर्तन में प्रमुख स्थान दिया। ऐसी जनश्रुति है कि चैतन्य महाप्रभु विद्यापति के पदों का गायन करते हुए भावावेश मूर्छित भी हो जाया करते थे।

1.2.2.3 शृंगारी कवि के रूप में

रामचन्द्र शुक्ल, राम कुमार वर्मा तथा बाबूराम सक्सेना इत्यादि उपर्युक्त मत से सहमत नहीं है। उनके मत में विद्यापति ने राधा–कृष्ण के जिन चित्रों को अंकित किया है वे स्थूल व वासनाजन्य प्रेम से परिपूर्ण हैं। अतः पदावली के अन्तर्गत विद्यापति एक शृंगारी कवि हैं भक्त नहीं। महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री विद्यापति को शृंगारी कवि सिद्ध करते हुए कहते हैं– ''संस्कृत भाषा में लिखे हुए विद्यापति के स्मृति–ग्रंथों में शिव, गंगा और दुर्गा का उल्लेख किया गया है, किन्तु कृष्ण का नाम कहीं भी नहीं आया है। लेकिन विद्यापति ने मैथिली में जो रचनाएं की उनमें शिव, गंगा और पार्वती का वर्णन कम मिलता है। अधिकांश पदों में राधा–कृष्ण ही पाये जाते हैं।

विद्यापति जब पंडित होकर लिखते हैं तो राधाकृष्ण का नाम नहीं लेते, किन्तु जब श्रृंगार रस में कविता करते हैं तो राधाकृष्ण ही अधिकतर पाये जाते हैं।''

डॉ0 सुभद्र या विद्यापति के पदों में रहस्यवाद ढूंढने वाले आलोचकों को प्रताड़ित करते हुए कहा है–''ग्रियर्सन तथा अन्य विद्वानों ने जो विद्यापति के प्रेमगीतों में प्रतीकात्मक रहस्य ढूँढने की कोशिश की है वह सर्वथा अनावश्यक है। भारतीय प्रतीकात्मक पद कबीर, जायसी तथा कुछ अन्यों के है जिनमें जीवात्मा परमात्मा से मिलने के लिए आतुर रहती है। इन कवियों की जीवात्मा ही परमात्मा से एकात्मकता चाहती है किन्तु विद्यापति के पदों में ऐसी कोई बात नहीं है।''

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने भी पदावली में भक्ति–भावना देखने वाले आलोचकों के सम्बन्ध में कहा है :–

''आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने गीत–गोबिन्द के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी।''

डॉ0 राम कुमार वर्मा विद्यापति को श्रृंगारी कवि घोषित करते हुए कहते हैं ''विद्यापति के इस बाह्म संसार में भगवद्–भजन कहां सद्यः स्नाता में ईश्वर से नाता कहां, उनके अभिसार में भक्ति का सार कहां, उसकी कविता वासना की उपासना है, उपासना की साधना नहीं।''

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के उपर्युक्त मतों की समीक्षा व पदावली के पदों की अन्तः सलिला पर दृष्टिपात करने के उपरान्त हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विद्यापति अपने व्यक्तिगत जीवन में चाहे कितने ही धार्मिक क्यों न रहे हों पर पदावली में उनका श्रृंगारी रूप ही मुखरित हुआ है। इस कथन की पुष्टि युगीन परिस्थितियों व अन्तः साक्ष्य के रूप में पदावली के पदों के आधार पर की जा सकती है। विद्यापति एक शुद्ध श्रृंगारी कवि हैं इस सम्बन्ध में हम निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं :–

(1) पदावली की रचना जयदेव के गीत गोविन्दम् के आधार पर की गयी है। गीतगोविन्दम् आद्योपान्त श्रृंगार रस से परिपूर्ण काव्य है। उसमें राधा व कृष्ण एक विलासी नायक नायिका के रूप में चित्रित हुए हैं। विद्यापति के पदों पर जयदेव का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। संभवतः इसी कारण विद्यापति को 'अभिनव जयदेव' भी कहा गया है।

(2) वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत विष्णु स्वामी और निम्बार्क ने राधा कृष्ण की प्रेम लीला को महत्व देते हुए युगलमूर्ति की भक्ति का प्रचार किया। विष्णु और निम्बार्क का समय तेरहवीं शताब्दी

है और विद्यापति का चौदहवीं शताब्दी। इस प्रकार विष्णु स्वामी और निम्बार्क विद्यापति के पूर्ववर्ती है परन्तु विद्यापति ने कहीं भी उनका अनुसरण नहीं किया है। विद्यापति के समय तक युगलमूर्ति की उपासना पूरी तरह विकसित नहीं हो पायी थी। उपासना की इस पद्धति का विकास विद्यापति के कई वर्षों के पश्चात् वल्लभाचार्य के युग में हुआ। बिहार और बंगाल के क्षेत्र में इसका प्रचार पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ। अतः स्पष्ट है कि विद्यापति पर जयदेव की शृंगारी परम्परा का प्रभाव है किसी विशिष्ट उपासना पद्धति का नहीं।

(3) कृष्ण लीलाओं का कीर्तन–गायन वैष्णव–भक्ति की विशिष्ट परम्परा है। चैतन्य महाप्रभु विद्यापति के पदों को गाते हुए भक्तिभाव से मूर्च्छित हो जाते थे। इस कारण कुछ आलोचक विद्यापति को भक्त कवि मानते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि विद्यापति के कुछ पदों को कीर्तन में स्थान मिलने पर वह भक्त कवि नहीं हो जाते। विद्यापति ने अपने पदों की रचना कीर्तन के लिए नहीं की थी। वे एक राजकवि थे और अपने आश्रयदाताओं की शृंगारी मनोवृत्ति की संतुष्टि के लिए उन्होंने अधिकांश पदों का सृजन किया। कई पदों में तो विद्यापति ने अपने आश्रयदाता राजा को कृष्ण और उसकी रानी को राधा माना है। वैष्णवों ने विद्यापति के कुछ ऐसे पदों को भी भक्तिपरक माना है जिनमें राधा या कृष्ण का नाम भी नहीं है। यथा :–

''आज मझु सुभ दिन भेला
कामिनी पेखल सनानक बेला।''

उपर्युक्त पद में भक्तिभाव कदापि नहीं हो सकता अपितु यह तो स्नान करती हुई नायिका का मादक शृंगारी चित्र है।

(4) मिथिला में विद्यापति के राधा–कृष्ण से सम्बन्धित पदों को विवाह के अवसर पर गाया जाता है, मन्दिरों में भजन कीर्तन में नहीं। सुहागरात के समय नववधु को शयन–कक्ष की ओर ले जाती स्त्रियां विद्यापति के इस पद को गाती हैं :–

सुन्दरि चललिहु पहु–घर ना। चहु दिस सखी सब कर धरना।
जाइतहु लागु परम डर ना। जइसे ससि कांप राहु डर ना।''

चतुर्थी के अवसर पर नव–वधु को स्नान करवाती हुई स्त्रियां गाती हैं :–

कामिनी करए सनाने। हेरितहि हृदय पंचबाने।
चिकुर गरए जलधारा। जनि मुस–ससि डर रोअए अंधारा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैथिल प्रदेश की स्त्रियां विद्यापति के पदों द्वारा नववधू को काम कला की शिक्षा देती हैं। इसके अतिरिक्त नव वधु के लिए जो कुछ भी जानना उपयोगी हो सकता है वह सभी कुछ विद्यापति के पदों में उपलब्ध है। इस कारण विद्यापति के पदों का जितना स्त्री–समाज में प्रचलन हुआ उतना मैथिल प्रदेश के पुरुष समाज में नहीं। संभवतः इसी बात को ध्यान में रखते हुए शिवनन्दन ठाकुर ने कही है –''कौतुक गृह (कोहवर) से आने और जाने के समय रमणीसमाज विद्यापति के पदों द्वारा श्रृंगाररस की रसमय शिक्षा देकर उस नवीन गृहस्थ के हृदय में श्रृंगार रस अंकुरित करता है। उस शिक्षा का प्रभाव चिरस्थायी हो इसलिए मधुपर्क के समय खाने के समय, अनेक तरह की सामाजिक रीतियों के समय और–और घर की स्त्रियां भी बुलाई जाती हैं। इस अवसर के लिए जिन–जिन विषयों की आवश्यकता है उन सब विषयों का पदावली में पूर्ण रूप से समावेश है।''

विद्यापति ने पदावली के अधिकांश पदों की रचना राजा शिवसिंह के आश्रय में रहकर की थी। राजा शिवसिंह विद्यापति के परम मित्र तथा श्रृंगार प्रेमी जीव थे। उनकी रानी लखिमा देवी भी उन्हीं की भान्ति विदुषी थी। इस प्रकार विद्यापति ने जिस दरबारी वातावरण में अपना अधिकांश जीवन व्यतीत किया वह भक्तिकाव्य के निर्माण के लिए नहीं अपितु श्रृंगारिक काव्य लिखने के लिए अधिक उपयुक्त था। पदावली के अन्तर्गत विद्यापति ने राधा व कृष्ण से सम्बद्ध अनेक पदों में राजा शिवसिंह व रानी लखिमा देवी का नाम लिया है और कहीं कहीं पर उन्हें कृष्ण व राधा तक कह दिया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :–

(1) ''बुझल सकल रस नृप सिवसिंघ लखिमा देई कर कन्त रे।''

(2) ''मव विद्यापति कम्पित कर हो बोलल बोल न जाय।
राजा सिवसिंघ रुपनारायन साम सुन्दर काय।''

(3) ''ई रस राय सिवसिंघ जानए, कवि विद्यापति भान।
रानि लखिमा देइ बल्लभ, सकल गुन निधान।''

विद्यापति के राधा–कृष्ण वैष्णवों के उपास्य नहीं अपितु एक सामान्य नायक नायिका है। श्रीमद्भागवत में राधा को कृष्ण की प्रेयसी के रूप में मान्यता नहीं दी गयी है। सूरदास ने भी राधा का चित्रण अन्य गोपियों से पृथक कर प्रेयसी के रूप में नहीं किया है। श्रीमद्भागवत और सूर सागर में कृष्ण की बाल लीलाओं और उनके असुर संहारी रूप का चित्रण भी किया गया है परन्तु

विद्यापति ने इन प्रसंगों की उपेक्षा की है। विद्यापति ने अन्य भक्त कवियों की भांति कृष्ण चरित्र में सौन्दर्य के साथ साथ शील व शक्ति को कहीं भी अंकित नहीं किया है। विद्यापति के कृष्ण तो एक सामान्य प्रेमी की भांति संकेत स्थल पर अपनी प्रेमिका राधा की प्रतीक्षा करते दिखाई देते हैं :–

नन्दक नन्दन कदम्बक तरुतर धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय संकेत–निकेतन बइसल, बेरि बेरि बोलि पठाव।
सामरि, तोरा लागि अनुखन विकल मुरारि।
जमुनाक तिर उपवन उदवेगल, फिर फिर ततहि निहार।
गोरस बेचए अबइत–जाइत जनि जनि पुछ बनमारि।।''

इसी प्रकार विद्यापति की राधा है। वह लोक मर्यादा की उपेक्षा कर अभिसार के लिए उद्यत है। अभिसार के लिए तैयार राधा को सखियों का कहना है :–

''धनि धनि चलु अभिसार।
सुभ दिन आजु राजपन मनमथ, पाओब की रीति बिथार।
गुरुजन नयन अंध अरि आओल, बांधव तिमिर बिसेख।
तुअ उर फुरत वाम कुच लोचन, बहु मंगल करि लेख।
कुलवति धरम करम भय अब सब, गुरु मंदिर चलु राखि।
प्रियतम संग रंग करु चिरदिन, फलत मनोरथ साखि।''

विद्यापति के कृष्ण मर्यादा की समस्त सीमाओं का उल्लंघन करते हुए राधा के नीवी–बन्धन को खोल देते हैं :–

निबि–बन्धन हरि किए कर दूर। एहो पए तोहर मनोरथ पूर।
हेरने कअन सुख बुझ न विचारि। बड़ तुहु ढीठ बुझल बतमारि।''

इस प्रकार के राधा–कृष्ण शृंगार का आलम्बन तो माने जा सकते हैं परन्तु भक्ति भावना का कदापि नहीं। जहां सूरदास ने कृष्ण की प्रेमक्रीड़ाओं का वर्णन करते हुए उनकी अलौकिकता का विस्मरण नहीं किया है वहां विद्यापति ने इस प्रकार की घटनाओं को स्पर्श तक नहीं किया है। पदावली के पदों का हम शृंगार रस के अन्तर्गत वयः सन्धि, पूर्वराग मिलन, दूती प्रसंग, अभिसार व विरह आदि शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं। इन समस्त पदों में राधा कृष्ण के नायिका व नायक भाव को ही चित्रित किया गया है राधा–कृष्ण के जो भी चित्र पदावली में अंकित हैं वे सब स्थूल वासनामय

एवम् मांसल है। आध्यात्मिकता, धार्मिकता व भक्ति भावना यहां कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। विरह–वर्णन सम्बन्धी पदों में विद्यापति अन्य पदों की अपेक्षा कुछ ऊंचे उठे प्रतीत होते हैं परन्तु वहां भी उनका भक्ति रूप प्रकाश में नहीं आता। सूरदास जैसे कवियों की तरह विद्यापति के विरह वर्णन में गंभीरता व शालीनता नहीं है। जहां सूर की गोपियां कृष्ण के दर्शन मात्र से धन्य हो उठती है वहां विद्या की वियोगिनी राधा कृष्ण के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उत्सुक है। उसका कहना है :–

''कत दिन पिय मोर पूछत बात, कबहुं पयोधर देहब हाथ।
कत दिन पिय बैठाइब कोर, कत दिन मनोरथ पूरब मोर।''

विद्यापति की राधा शारीरिक संसर्ग के लिए इतनी उत्सुक है कि यौवन बीत जाने पर वह प्रिय मिलन को बेकार समझती है :–

''जौबन बिनु तन जौबन, की जौबन पिय दूरे।
ई नब जीवन विरह गमाओब, कि करब से पिया गेह।''

कुछ पदों में विद्यापति ने कृष्ण की विरहदशा का वर्णन भी किया है। वह वर्णन भी स्थूल व वासना से परिपूर्ण है। एक उदाहरण प्रस्तुत हैः–

तिल एक सयन ओत जिउ न सहए न रहए दुहु तन भीन।
मांझे पुलक गिरि अन्तर मानिए, अइसन रह निस–दीन।
सजनी कोन परि जीबए कान।
राहि रहल दुर हम मथुरापुर, एतहु सहए परान।''

अर्थात् एक समय ऐसा था जब कृष्ण राधा से एक तिल का अन्तर भी सहन न करते थे। संभोग के समय दोनों के शरीर के बीच रोमावली पहाड़ के समान बाधा प्रतीत होती थी। इस प्रकार वे दोनों रात दिन मिलकर रहा करते थे। किन्तु अब राधा से बिछुड़ने पर कृष्ण का जीवित रहना कठिन है। विद्यापति को संस्कृत के काव्य शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था। उनका यह ज्ञान पदावली के शृंगारिक पदों में देखा जा सकता है। शृंगार रस के अन्तर्गत नायिका भेद काव्य–शास्त्र का प्रमुख विषय मानय गया है। विद्यापति ने काव्यशास्त्रीय लक्षणों को ध्यान में रखते हुए नायिकाओं के विभिन्न भेदों को प्रस्तुत किया है। क्रमशः मुग्धा व अभिसारिका का एक–एक चित्र द्रष्टव्य है :–

मुग्धा – 'खने खने नयन कोन अनुसरई, खने खने बसन धूलि तनु भरई।

खने खन दसन–छटा छूट हास, खने खन अधर आगे गहु बास।
चऊंकि चलए खने खन चलु मन्द, मनमथ पाठ पहिल अनुबन्ध।
हिरदय–मुकुल हेरि हेरि थोरि, खने आंचर दए खने होए भोर।''

अभिसारिका – आज पुनिम तिथि जानि मोयं अएलिहुं, तोहर उचित अभिसार।
देह–जोति ससि किरन समाइति के विभिनबाए पार।
सुन्दरि अपनहु ह्रदय विचारि।
आंखि पसार जगत हम देखलि, के जग तुअ सम नारि।
तेहि जनि तमि होत कए मानह, आनन तोर तिमिरारि।
सहज विरोधी दूर परिहरि छनि, चलु उठि जतए मुरारि।''

इसी प्रकार शृंगार के आलम्बन व उद्दीप्त विभाव, अनुभाव तथा संचारियों का विवेचन विद्यापति ने काव्यशास्त्रीय आधार पर किया है। नायिका की वयः सन्धि, यौवनागम, प्रथम मिलन व प्रिय समागम आदि के मादक चित्र विद्यापति के काम शास्त्रीय ज्ञान को भी स्पष्ट करते हैं। अतः विद्यापति काव्य शास्त्र व कामशास्त्र दोनों से परिपुष्ट शृंगारी कवि हैं।

पदावली में राधा और देवी की वन्दना के दो पद भी पाए जाते हैं। देवी के प्रति विद्यापति की भक्ति स्पष्ट है। बस एक पुत्र के रूप में देवी के प्रति अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं :–

''विद्यापति कवि तुअ पदसेवक पुत्र बिसरू जनि माता।''

राधा की स्तुति में कवि की शृंगारी मनोवृत्ति ही स्पष्ट होती है। उनका कहना है :–

''देख–देख राधा–रूप अपार।
अपुरुब के विहि आनि मिलाओल खितितल लावनि–सार।
अगहि अंग अनंग मुरछायत हेरए पड़ए अधीर।
मनमथ कोटि मथन करु जे जन से हेरि महि मधि गीर।
कत–कत अखिमी चरणतल ने ओछए रंगिनि हेरि विभोरि।
करु अभिलाख मनहि पदपंकज अहोनिसि कोर अगोरि।''

अर्थात् विद्यापति की राधा के अपूर्व सौन्दर्य को देखकर करोड़ों कामदेवों का मंथन करने वाले लोग भी मूर्च्छित होकर गिर जाते हैं। विद्यापति ऐसी अपूर्व सौन्दर्य की प्रतिमा राधा के चरणों को गोद में लेने की इच्छा प्रकट करते हैं, भक्त की तरह चरणों में नतमस्तक नहीं होते।

अपनी पुस्तक 'कीर्तिपताका' में विद्यापति का कहना है :–

''तद्याथा रामेण रामजन्मनि सीताविरहग्धमानसेन
तदखेदापनोदाय कृष्णावतारेण गोपकुमारेण
सुन्दरी सहस्त्रसाहित्यसमुजातकुतुकेन कामिनीभि।''

अर्थात् सीता के विरह से राम को असीम वेदना सहनी पड़ी थी। इस कारण उनके मन में कामकला निपुण अनेक स्त्रियों के साथ सुख भोगने की इच्छा उत्पन्न हुई। इस इच्छा की पूर्ति के लिए हे कृष्ण रूप में अवतरित हुए और अनेक गोपियों के साथ प्रेमक्रीड़ा का आनन्द प्राप्त किया। विद्यापति का उपर्युक्त कथन यह स्पष्ट कर देता है कि उनकी अभिरुचि राधा–कृष्ण के शृंगारी रूप में ही है। डॉ0 ग्रियर्सन जैसे आलोचकों ने विद्यापति के राधा कृष्ण सम्बन्धी पदों की ईश्वरोन्मुख मानकर विद्यापति को रहस्यवादी कवि सिद्ध करने का प्रयास किया है। पदावली के पदों का गहन विश्लेषण करने के उपरान्त हमें उनमें रहस्यवादी के अन्तर्गत रहस्यवाद से सम्बन्धित जिन दार्शनिक विचारों तथा पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है उसका विद्यापति के पदों में सर्वथा अभाव है। वस्तुतः विद्यापति के पदों में रहस्यवाद की मांसल अभिव्यंजना हुई है।

पदावली में विद्यापति ने जनभाषा मैथिली का प्रयोग किया है इस भाषा के सम्बन्ध में उनका कहना है :–

''बालचन्द बिज्जावइ भासा, दुहू न लग्गई दुज्जन हासा।
ओ परमेसर हर सिर सोहइ, ई णिच्चइ नायर मन मोहइ।''

यहां विद्यापति ने पदावली की भाषा को नायर (नागर, रसिक) जनों के हृदय को मुग्ध करने वाली कहा है। पदावली की भाषा का रसिक जनों के हृदय को मुग्ध करने में समर्थ होने का कारण उसकी शृंगारिकता ही है। यदि विद्यापति ने भक्तिभाव से पदावली की रचना की होती तो अपनी इस भाषा के सम्बन्ध में उन्हें दुर्जनों के उपहास (दुहु न लग्गाई दुज्जन हासा) की आशंका न होती। अतः स्पष्ट है कि विद्यापति अपनी इस रचना को शृंगार प्रधान मानते हैं भक्ति प्रधान नहीं।

1.2.2.4 स्वयं जांच अभ्यास

1. विद्यापति की रचनाओं के नाम लिखें।

.....

.....

1.2.3 सारांश

उपर्युक्त समस्त विवेचन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विद्यापति अपने निजी जीवन में चाहे शिव के भक्त हों या शक्ति के उपासक परन्तु पदावली में अधिकांशतः उनका श्रृंगारिक स्वर ही मुखरित हुआ है। एक भक्त के हृदय का स्पन्दन वहा पाया दिखाई नहीं पड़ता।

1.2.4 शब्दावली

1. विरह – वियोग
2. संयोग – मिलन
3. श्रृंगार – रूपसज्जा
4. रहस्यवाद – गोपनीय
5. उपासना – पूजा

1.2.5 प्रश्नावली

1. विद्यापति भक्त या श्रृंगारी कवि थे। टिप्पणी करें?
2. विद्यापति को भक्त मानने वाले कवियों का संक्षिप्त वर्णन करें?
3. विद्यापति को श्रृंगारी कवि मानने वाले कवियों का संक्षिप्त वर्णन करें?
4. विद्यापति को किन–किन विद्वानों ने रहस्यवादी कवि माना है?
5. विद्यापति की पदावली में किस श्रृंगार का वर्णन हुआ है?

1.2.6 सहायक पुस्तकें :

1. विद्यापति एक तुलनात्मक समीक्षा : जयनाथ नलिन
2. विद्यापति : शिवप्रसाद सिंह
3. विद्यापति : डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित

पाठ संख्याः 1.3

लेखिका –डॉ0 हरिसिमरत कौर

कबीरदास

(संवत 1455–1551 तक)

इकाई की रूपरेखा :

1.3.0 उद्देश्य
1.3.1 प्रस्तावना
1.3.2 कबीर का व्यक्तित्व
1.3.3 कृतित्व
1.3.4 कबीर की काव्यगत विशेषताएं
भाव पक्ष
कला पक्ष
1.3.4.1 स्वयं जांच अभ्यास
1.3.5 सारांश
1.3.6 शब्दावली
1.3.7 प्रश्नावली
1.3.8 सहायक पुस्तकें

1.3.0 उद्देश्य :

कबीर जी निर्गुण भक्ति काव्यधारा का प्रतिनिधत्व तो करते ही थे, साथ ही अन्यायी अत्याचारी शासन तथा ढोगों और कर्मकाण्डी समाज को धता बताकर अपने युग के चिंतक मस्तिष्क में प्रश्नाकुलता जगा देने वाले महापुरुष भी थे। हिन्दी साहित्य में कबीर एक ऐसे संत कवि हैं, जो साहित्य, समाज, अध्यात्म और साधना चारों क्षेत्राों में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मिथ्याडम्बरों के प्रति प्रतिक्रिया कबीर का जन्मजात गुण था। वे वही कहते थे, जिसे उनकी आत्मा सत्य की कसौटी पर परख कर उचित समझे। उनका जीवन और व्यक्तित्व अपने आप में उनकी शिक्षाओं का साकार रूप था। प्रस्तुत पाठ पढ़ने के बाद आप–

– कबीर के जीवन और व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
– उनके द्वारा रचित साहित्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

– उनके साहित्य के विभिन्न पक्षों की जानकारी आपको मिल जाएगी।

– निर्गुण काव्य धारा में उनके स्थान की संक्षिप्त जानकारी भी प्राप्त कर पाएंगे।

1.3.1 प्रस्तावना :

महापुरुष अपने समय की देन होते हैं। महात्मा कबीर मध्यकाल के तिमिराच्छन्न (अन्धकारमय) वातावरण में अपना ज्ञानदीप लेकर अवतरित होते हैं, जिससे भूली भटकी जनता उचित पथ और सम्बल पाती है। कबीर के जन्म को लेकर तो मतभेद अवश्य रहे हैं, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि कबीर का पालन पोषण नीरू–नीमा जुलाहा दम्पत्ति ने किया और रामानन्द जी को इन्होंने अपना गुरु घोषित किया हैं। कबीर के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए एक स्थल पर डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने उनकी तुलना महात्मा गांधी से की है। कबीर और महात्मा गांधी दोनों ही अपने अपने युग के सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति हुए हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा कबीर की महानता को दर्शाते लिखते हैं – ''ऐसी स्वतन्त्रा प्रवृत्ति वाला कलाकार किसी साहित्य–क्षेत्रा में नहीं पाया गया। वह किन–किन स्थलों में विहार करता है, कहाँ–कहाँ सोचने के लिए जाता है, जिस प्रशान्त वन–भूमि के वातावरण में गाता है, ये सब स्वतन्त्राता के साधन उसी को ज्ञात थे, किसी अन्य को नहींकृकला के क्षेत्रा का सब कुछ उसी का था।''

1.3.2 कबीर का व्यक्तित्व :

कविता वह अनुभव है जो एक आत्मा को परमात्मा के इतना निकट ले जाती है कि आत्मा का स्वयं का अस्तित्व शून्य समान हो जाता है। यद्यपि यह अनुभव बहुत कठिन है, किन्तु फिर भी हिन्दी के बहुत से कवि इस अनुभव में सफल रहे हैं, जिनमें से एक नाम है कबीर दास। कबीर को निर्गुण भक्ति काव्य धारा का प्रवर्त्तक माना जाता है। कबीर के जन्म सम्वत् को लेकर विद्वानों में मताएक्य नहीं है। परन्तु फिर भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया है कि कबीर दास को जन्म तिथि सम्वत् 1407 के बाद और सम्वत् 1482 से पहले है। कबीर की जन्म तिथि के विषय में कबीर पंथियों में निम्नलिखित उक्ति प्रसिद्ध है :

''चौदह सौ पचपन साल गये चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सदी वरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।''[1]

''डॉ. श्याम सुन्दर दास के अनुसार यह कबीर जी के उत्तराधिकारी धर्मदास की उक्ति है।''

उन्होंने 1455 सम्वत् को कबीर दास का जन्म स्वीकार किया। उनका जन्म काशी नामक स्थान पर हुआ माना जाता है मगर कुछ विद्वानों में मतभेद हैं। जो विद्वान कबीर के अनपढ़ होने की बात करते हैं वे निम्नलिखित दोहे का हवाला देते हैं :

''मसि कागत छुऔ नहीं कलम गहि नाहि हाथ।
चारों जुग को महातम मुखहिं जनाई बात।''[2]

परन्तु कबीर ने एक अन्य स्थान पर लिखा है –

''यह तन जालों मसि करौ लिखूं राम का नाऊं
लेखणि करूं करंक कौ लिखि लिखि राम पढाऊं।''[3]

इस तरह स्पष्ट है कि कबीर अनपढ़ नहीं हो सकते, उन्होंने जो मसि कागज को न छूने वाली बात कही है उसका अभिप्राय मात्रा यह है कि कबीर कागज़ पर लिखने की अपेक्षा मौखिक उपदेशों पर

अधिक विश्वास करते थे। कबीर की मृत्यु को लेकर भी मतभेद हैं, परन्तु अधिकांशतः प्रचलित मत के अनुसार उनकी मृत्यु मगहर में हुई थी।

कबीर के व्यक्तित्व के पीछे उसके वातावरण का बहुत बड़ा हाथ है क्योंकि कोई भी व्यक्ति जन्म से ऐसा नहीं होता जैसा कि वह मौजूदा समय में है। उसके स्वभाव, बोलने का ढंग, पहरावे का ढंग इत्यादि के पीछे उसका सामाजिक दायरा भी होता है। कबीर अक्खड़ स्वभाव वाले थे। मगर उनका इस तरह होना अत्यधिक आवश्यक था क्योंकि लोगों को सत्य से साक्षात्कार कराने के लिए एक ज़ोरदार आवाज़ लगानी जरूरी थी। कबीर के समय देश मे अस्थिरताएं, अव्यवस्था तथा अशान्ति फैली हुई थी। सभी धर्म संकीर्ण और अन्धविश्वासी हो चुके थे, सभी धर्म अपने आप को श्रेष्ठ तथा दूसरों को हेय समझते थे। धर्मों में कर्मकाण्डों को अत्यधिक महत्व दिया जा रहा था। इस प्रकार के वातावरण में साधारण जनता का नरक कुण्ड बन कर रह गया था। उस समय लोगों के सही मार्ग दर्शन के लिए एक ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो 'साधु ऐसा चाहिए जैसे सूप सुभाय' की उक्ति को चरितार्थ कर सकता हो, अतः कबीर ने इस रिक्तता को पूर्ण किया, क्योंकि वह इसी प्रकार के युग पुरुष थे। वे किसी विशेष सम्प्रदाय या शास्त्रा विषय के संस्कारों से सम्बन्धित नहीं थे। वह न हिन्दू थे न मुसलमान वह तो बस भक्त थे। उनके मतानुसार परमात्मा का सौन्दर्य ब्राह्मण में व्याप्त था। फिर उसे मन्दिर या मस्जिद की परिधि में बांटने की चेष्टा क्यों की जाती है। जहां मन्दिर मस्जिद नहीं क्या वहां भगवान नहीं होता? मुसलमान ईश्वर को अल्ला कह कर सम्बोधित करते हैं और हिन्दू राम। शब्द भेद होने से ईश्वर भेद नहीं होता। इसलिए शब्द भेद के आधार पर लड़ने वालों को कबीर ने डांटा है :

हिन्दु मूये राम कहे, मुसलमान खुदाई।
कहै कबीर, सौ जीवता, दुई मैं कदे ना जाई।

(कबीर ग्रंथावली पद–47)

कबीर ने तत्कालीन शासन को भी चुनौती दी है। उस युग के शासन का आधार था, काज़ी, जो महत्ता हिन्दु समाज में पंडितों को दी जाती थी वही महत्वपूर्ण स्थिति उस वक्त काजी की थी। मुस्लिम शासन के सभी निर्णय काजियों के मतानुसार किये जाते थे और वे काज़ी पक्षरहित निर्णय नहीं देते थे। इसलिए कबीर ने उन्हें डांटते हुए कहा है :

''काजी कौन कतैब बखानै।
पढ़त पढ़त केते दिन बीतै, गीत एकै नहीं जाने। टेक।।
सुकर्ति से नेह पुकारि करिए सुनति यह न बूंद रे भाई।
और खुदाई तुरक मोहि करता, तो आयौ कटि किन जाई।
है तो तुरक किया करि सुनति, औरत सौ का कहिये।
अरध सरीरी नारि न छुटे, आधा हिन्दु रहिये।
छाडि कतैब रामै कहि काज़ी, खन मरत हो भारी।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहैं मुख मारी।''

(कबीर : कबीर ग्रंथावली पद – 59)

निःसन्देह इस पद से कबीर के व्यक्तित्व में निडरता का अंश फूट पड़ता है, क्योंकि उस समय इस तरह से काज़ी के लिए कुछ भी कहना मुश्किल ही नहीं असम्भव भी था। मगर कबीर ने साहस का परिचय देते हुये काज़ी तक को डांट भी दिया।

कबीर के व्यक्तित्व का एक विशेष गुण यह भी था कि वे स्पष्ट–वादी थे। लोक दिखावे, आडम्बर अपनी बात को लाग लपेट कर कहने के पक्ष में बिल्कुल भी नहीं थे। उन्होंने तीर्थ यात्राा, स्थान इत्यादि को निरर्थक माना है, उनके मतानुसार तीर्थ–जल से केवल हमारे तन की मैल उतरती है जबकि मन की मैल को उतारने के लिए तो केवल राम–नाम का साबुन ही उपयुक्त होता है। कबीर जी का मानना था कि स्नान से ही मोक्ष मिलता तो मेढ़क मछलियां तो भगवान के चरणों में होनी चाहिए थीं। मगर ऐसा नहीं है। कबीर जी ने ग्रंथों के पठन की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार किताब पढ़ने से कोई भी व्यक्ति पंडित नहीं बन जाता बल्कि वह व्यक्ति सही अर्थों में पंडित है जिसने अपने प्रभु खुदा से प्रेम किया है। वह लिखते हैं :

''पौथी–पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होई।''

(कबीर–ग्रन्थावली पद 34)

मध्य युग के इस महान फक्कड़ संत की कभी कोई शेख–कुरान तथा मन्दिर व मस्जिद भी राह न रोक सके। वे मस्तमौला थे इसलिए उन्होंने अपनी बात बिना लाग लपेट के एक दम स्पष्ट शब्दावली में कही। उन्हें कभी नहीं लगा कि पहले वो अपनी शब्दावली का सांज–संवार ले तब अभिव्यक्त करें। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कबीर के बारे में लिखा है :

''.....ब्रह्मचारी के जीवन्त, प्रतिक्रिया, शास्त्राीय विचार की अनभिज्ञता के कारण निर्भीक विचार की अनभिज्ञता के कारण निर्भीक आक्रमण–कारिता और अपने निर्दोषता से परिपूर्ण भरोसे से उनके आत्म–विश्वास को आक्रमक ;।हतमेपअमद्ध बना दिया था और उनकी लापरवाही को भी रक्षात्मक ;क्मिदेपअमद्ध बना दिया था। इसीलिए वे सीधी बात को भी ललकारने की भाषा में बोलते थे।'' परन्तु इससे अभिप्राय ये नहीं कि उनमें विनम्रता लेश मात्रा भी नहीं थी। बल्कि उन्होंने तो मीठी भाषा को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए कहा है कि :

ऐसी बाणी बोलिए मन का आपा खोई।
अपना मन सीतल करे औरन को सुख होई।

कबीर के जीवन में ऊँच–नीच, छुआछूत का विरोध, अहिंसा, समानता की भावना, भक्ति करनी आदि भावनाओं का महत्व रहा। जो लोग जाति–पाति में विश्वास करते थे कबीर ने उन्हें भी खूब झटकाराः

जो तू ब्राह्मणी जाया।
आन बाठ हुवै क्यों नहीं आया।

कबीर ने हमेशा कागज़ की लेखनी पर नहीं बल्कि अपनी आंखों की देखी पर विश्वास किया है। इसीलिए कोई भी शास्त्रा उनके लिए प्रमाण भूल नहीं है तथा गुरु के अतिरिक्त कोई और अनुकरणीय नहीं है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने सत्य ही कहा है – ''हजार वर्ष के इतिहास में कबीर जैसा

व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ है।'' निष्कर्षतः यह कहना उचित रहेगा कि कबीर का व्यक्तित्व एक नारियल की भांति था जो दिखने में बाहर से वज्र की तरह कठोर मगर अन्दर से उतना ही रस भरा हुआ। कबीर ने अगर कटु वाणी का प्रयोग किया तो उनका मकसद केवल लोगों को वास्तविक स्थिति के प्रति जागरूक करवाना था। इस लिए कबीर के व्यक्तित्व में विलक्षणता दिखाई देती है।

1.3.3 कृतित्व

डॉ. राम कुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक 'सन्त कबीर' की प्रस्तावना में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का सम्वत् 1908 से सम्वत् 1909 तक की रिपोर्टों को आधार मान कर कबीर के नाम पर प्रचलित 85 ग्रन्थों की एक सूची प्रस्तुत की। उन्होंने लिखा है – ''यदि स्वतन्त्रा ग्रंथों की गिनती की जाये तो वे अधिक से अधिक 56 ही होगी।''[1]

कबीर की रचनाओं की प्रमाणिकता को लेकर डॉ. सरनाम सिंह, हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस विषय पर विस्तार से विचार किया कि कबीर के नाम से प्रचलित इतनी सारी रचनाओं में आखिर कबीर की वास्तविक रचना कौन सी है? मगर अनथक प्रयत्नों के उपरान्त शोध के आधार पर उपर्युक्त विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि 'आदि ग्रन्थ' में संकलित 'कबीर वाणी' कबीर की वाणी तथा बीजक, ये तीनों रचनाएं हैं जो अपेक्षाकृत प्रमाणिक हैं :

आदि ग्रन्थ : यह सिक्खों का धार्मिक ग्रन्थ है। इसकी रचना 1604 ई. में गुरू अर्जुन देव जी ने की। इसमें कबीर दास के 225 पदों और 224 साखियों का संकलन किया गया है। 'आदि ग्रंथ' में संकलित रचनाओं और प्रामाणिकता के विषय में संदेह किया जा सकता है, क्योंकि कबीर की मृत्यु के बहुत देर बाद यह संकलन तैयार हुआ। अतः उस समय तक कबीर की वाणियों के मूल रूप में परिवर्तन की सम्भावनाएं बढ़ गई हैं। यह भी हो सकता है कि जिस प्रति से संकलन तैयार किया गया हो उसमें कुछ अन्य संतों की वाणियों का मिश्रण भी हो गया हो। आदि ग्रन्थ में कुछ ऐसी रचनाएं भी हैं जो अत्यन्त मामूली अन्तर से गुरू गोरखनाथ के नाम से पाई जाती हैं यथा :

''इहु मन सकती इहु मन सीव। इहु मन पंच तत का जीव।
इहु मन लैलऊ रहै। तउ तीनि लोक की बातें कहौ।''

(आदि ग्रंथ राग गउड़ी वावन अखरी 33ध्75)

''इहु मन सकती इहु मन सीख।
इहु मन पांच तत की जीव।
इहु मन लै जै उनमन रहै। तो तीनि लोक की बाता कहैं।।''

(डॉ. पीताम्बर दास बड़श्वाल सम्पादक गोरख वाणी 1ध्50)

आदि ग्रंथ में कबीर की रमैणी को संकलित नहीं किया गया है। इस संकलन की रचनाओं में कबीर के शुद्ध हृदय की झलक देखी जा सकती है। इस संग्रह में कबीर की ऐसी रचनाएं हैं जिनका श्रृंगारिक भावों की अपेक्षा सेवक–सत्य की प्रधानता, दीनता एवम् श्रद्धा को देखा जा सकता है। (आदि ग्रन्थ) के संकलन की एक निश्चित तिथि है जबकि अन्य संकलनों के विषय में ऐसा कुछ नहीं कहा जा

सकता है। डॉ. राम कुमार वर्मा ने इस संग्रह को पाठ को सर्वाधिक प्रामाणिक माना है और अपनी पुस्तक 'सन्त कबीर' में उसे प्रकाशित भी किया है।

बीजक

इस ग्रन्थ को कबीर का धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है। कबीर जी ने इस पुस्तक की महत्ता को स्पष्ट करने के लिए एक स्थान पर लिखा है :

बीजक बतावै वित्त को जो वित्त गुप्त होय।
सबद बतावै जीव को बूझे बिरला कोय।

इस पंक्ति का अर्थ है कि बीजक उस धन को बताता है जो गुप्त होता है 'शब्द' जीव को बताता है। पर इसे कोई व्यक्ति ही समझ सकता है भाव यह हुआ कि इसमें जीव को शब्द द्वारा वित्त सम गुप्त बातें बताने का प्रयास किया गया है 'बीजक' के ऊपर अनेक विद्वानों ने टीकायें की हैं जिनमें से प्रमुख हैं – रीवां नरेश विश्वनाथ सिंह, पूरन साहब, विचारदास, हनुमानदास इत्यादि। मगर कोई भी विद्वान् इसके संग्रह काल के सम्बन्ध के विषय में कोई प्रामाणिक पुष्टि नहीं दे पाया। श्री वितसन ने तो बीजक को कबीर कृत न मानकर इसे भागूदास की रचना माना है। यह स्वीकार्य नहीं हो सकता क्योंकि इस विषय की पुष्टि के लिए उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। यह सम्भव है कि बीजक में कुछ अंश बाद में आये तो फिर भी बीजक कबीर के मतों का पुराना और प्रमाणिक संग्रह है तथा आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने भी इस मत को स्वीकार किया है।

कबीर ग्रन्थावली

डॉ. श्याम सुन्दर ने जिस हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर 'कबीर ग्रंथावली का सम्पादन किया है। उसका शीर्षक (कबीर की वाणी) है। इसके सम्पादन में उन्होंने दो प्रतियों को आधार माना उनमें से एक प्रति सम्वत् 1561 की तथा दूसरी सम्वत् 1581 की है। पूर्ववर्ती में दोहों की संख्या 131 और पांच पद बढ़ गये हैं और उन्हें सम्पादक ने इस संग्रह की पाद टिप्पणी में रखा है। पूर्ववर्ती प्रति कबीर की मृत्यु से 14 वर्ष पहले की है। सम्पादक ने इस के विषय में लिखा है :

''अन्तिम 14 वर्षों में कबीरदास ने जो कुछ कहा था यद्यपि वह इसमें सम्मिलित नहीं है तथा इसमें सन्देह नहीं कि सम्वत् 1561 तक की कबीरदास की समस्त रचनाएं इसमें संग्रहित है।''[1]

पूर्ववर्ती प्रति की पुष्पिका की अन्तिम डेढ़ पंक्ति में इसका रचनाकाल सम्वत् 1561 लिखा हुआ है। ऊपर की पंक्तियों से इस डेढ़ पंक्तियों की स्याही गाढ़ी है। लेखनी और अक्षरों की बनावट में भिन्नता प्रकट होती है। तो सम्भवत : इस प्रति को प्राचीन सिद्ध करने के लिए किसी ने पंक्ति बाद में जोड़ी है। मगर आशंका यह भी उठाई जा रही है कि यह भी हो सकता है कि लिपिकार यह रचनाकाल लिखना भूल गया हो और कुछ समय बाद उन्होंने लिखा हो।

मगर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कहना है कि ''इसकी प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं – इसीलिए मैंने इस पुस्तक कबीर में इस प्रति को प्रमाण रूप से बराबर व्यवहार किया है।''[1] (हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर की विचारधारा पृ. 5)

विद्वानों के कबीर ग्रन्थावली पाठ को प्रामाणिक मानकर उसे अपने अध्ययन की विषय बनाया है। इस प्रकार 'आदि ग्रन्थ' में संकलित पद बीजक तथा कबीर ग्रन्थावली – ये तीन पठन, पाठन का विषय माने हैं। तीनों ग्रंथों में न तो पदों की संख्या एक सी है न उनका क्रम। इतने भेद रहते हुये भी इतनी समानता अवश्य है कि वे सब प्राय 'साखी' (सबद) (रमैणी) के अन्तर्गत माने जाते है। तीनों ग्रंथों के पदों का मिलान करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि वर्गीकरण और क्रम के अन्तर के साथ–साथ उनमें पदों की एकरूपता का अभाव भी देखा गया है। उपर्यूक्त असमानताओं को देखते हुए ऐसा आभास होता है कि कबीर की तीन प्रधान परम्पराएं रहीं होंगी और उन्हीं से तीनों ग्रंथों के प्रस्तुत संग्रह अस्तित्व में आये होंगे।

निष्कर्षत : हम कह सकते है कि कबीर की रचनाओं का अभी तक कोई ऐसा संग्रह उपलब्ध नहीं हुआ जिसकी प्रामाणिकता के विषय में थोड़ी बहुत शंका न हो। उपर्युक्त तीनों ग्रन्थों की प्रामाणिकता अधिकांशतः किसी न किसी परम्परा एवम् उनकी प्राचीनता पर आश्रित है।

1.3.4 कबीर की काव्यगत विशेषताएं :

कविता करना कबीर का लक्ष्य नहीं था, अपितु साधन था। वे अपने विचारों को नैसर्गिक अभिव्यक्ति दिया करते थे, जिससे वे जनग्राह्य हो सके। उन्होंने अपने मन से उदित होने वाले भावों को वाणी का विषय बनाया। कबीर काव्य की सर्वोत्कृष्ट विशेषता उसकी प्रेषणीयता है। इस सम्प्रेषणिता के लिए उन्होंने शब्दों को तोला–संवारा नहीं।

किसी भी कविता की काव्यगत विशेषताओं को परखने के लिए विद्वानों ने दो कसौटियां निर्धारित की हैं जिन्हें साहित्य की भाषा में भाव पक्ष और कला पक्ष कहा जाता है। भाव पक्ष से तात्पर्य यह है कि ''क्या कहा गया है'' और कला पक्ष से अभिप्राय ''कैसे कहा गया है'' आते हैं।

भाव पक्ष

1. स्वतः स्फुटित

कबीर काव्य का सौन्दर्य उस वन्य–सरिता के समान है जिसका मार्ग पहले से बना हुआ नहीं होता, अपितु वह तो गिरिराज की गोद से निकल कर जिधर उचित समझती है वहीं मार्ग पर आगे बढ़ जाती है, वही मार्ग ही उसके लिए उपयुक्त रहता है। कबीर काव्य की सर्वाधिक विशिष्टता और अनूठापन उसकी सहजता और स्वाभाविकता में है। अपने चतुर्दिक वातावरण में आत्मा की प्रकृत पुकार से उद्भूत यह काव्य इसी प्रकार से फूटा है जैसे पर्वत के हृदय से अनजाने ही रसस्रोत निर्झर फूट पड़ते हैं। कबीर का काव्य भी आत्मा की अन्तः –प्रेरणा से फूटा है कि किसी बाहरी दबाव से नहीं।

2. रहस्यमयी भाव

''डॉ. राम कुमार वर्मा के अनुसार 'रहस्यवाद' जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह उस दिव्य और आलौकिक शक्ति से अपना निरछल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर नहीं रह जाता।''[3]

कबीर के काव्य में भी यह भाव अपनी चरम–सीमा के साथ आया है। कबीर के रहस्यवादी पदों में तो काव्य की उच्चतम निधि प्राप्त होती है। विरहिणी के विकल प्राणों की पुकार का वह आवेश–प्रवेश सब कुछ बड़ा मनोहरी बन पड़ा है :

''नैननि की करि कोठरी पुतली पलंग बिछाय।
पलकनु की चिक डारिकै, पिय को लेऊ रिझाय।''

प्रियतम के लिए इससे सुन्दर आवास और क्या हो सकता है? कबीर ने एक जगह प्रिय की प्रतीक्षा करते–करते विरहिणी की भावना की इतनी मार्मिक अभिव्यक्ति की है कि कोई भी उस विरहिणी की व्यवस्था को समझ सकता है :

आंखणया प्रेम कसाइयां, लोक जाणे दुखणिय
सांई अपने कारणों रोई–रोई रतणियां।।

प्रेम दीवानी मीरा में जो प्रेम की कसक, प्रेम पीर से आहत् जायसी में जो प्रेम ही चीत्कार है वह सब कबीर की व्यथा, तल्लीनता, बेचैनी कसक उन में ऐसी व्यग्रता कहां?

''विरहीन ऊभी पंथ सिर, पंथी बूझे छाया।।
एक सबद कह पीव का, कब रे मिलेंगे आय।।''

महादेवी चाहें शत–सहस्त्रा बार प्राणों में पीड़ा को पाले, किन्तु इस राम–दीवाने की तुलना नहीं कर सकी। प्रिय–दर्शन ने लिए व्याकुल कबीर की आत्मा जो–जो उपक्रम करने को प्रस्तुत है, वे दर्शनीय है :

''फाड़ि पुटोला धज करो,
कहौ तो कामणिया पहराऊं।
जिहि–जिहि भेषा हरि मिलै,
सोई–सोई भेष धराऊं।।''

3. मिलन चित्र

कबीर ने जहां समाज के आडम्बरों का फक्कड़ता से विरोध किया है, वहीं उन्होंने अपनी फक्कड़ता को छोड़कर निर्मल–भाव भी धरण किये हुए है। कबीर के काव्य में मिलन चित्रा बहुत ही है। निसन्देह कबीर के राम निराकार थे और उनके लिए राम के दर्शन को अभिव्यक्त करना सम्भव न था, क्योंकि वह अपरूप साधना में एकाध क्षण के लिए अपनी ऐसी आलौकिक छटा दिखाता है कि साध्क उसके स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकता। अवर्णनीय और 'गूंगे केरी शर्करा' के स्वाद के समान माना गया है। किन्तु कबीर जी ने विभिन्न प्रयासों से उसके अवर्णनीय तत्व की सत्ता को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया :

''एक कहूं तो है नहीं, दो कहूं तो गारी।
है जैसा रहे, कहै कबीर विचारी।।
ग ग ग ग ग
हेरत–हेरत में सखी, रहा कबीर हिराई।
बूंद समानी समुद्र में, सो कत मेरी जाई।।''

मिलन चित्रा के साथ कबीर में विरहिणी आत्मा की बेचैनी को भी व्यक्त करने की कोई कसर नहीं छोड़ी वे लिखते हैं :

''वो दिन कब आवैंगे माई।

जा कारीना हम दे धुरी है, मिलिवो अंग लगाई।
हो जानू जो हिल मिल खेलूं, तन मन प्राण समाई।
या कामना करो परिपूरन, समरथ हौं राम राई।।
मांहि उदासी माधो चाहै, चितवन रैनि बिहाय।
सेज हमारी स्पंघ भई मै, जब सोऊं तवखाह।।
यदु अरदास दास की सुनिये, तन की तपन बुझाई।
कहै कबीर मिलै जो साई, मिलि करि मंगल गाई।''

4. विरह भावना

कबीर के रहस्यवाद में अद्वैती और सूफ़ीमत की गंगा–जमुना धारा प्रवाहित है। यद्यपि उसमें प्रमुख अद्वैती गंगा धारा है। उन्होंने उस परमात्मा के विरह में बड़ी सुन्दर–सुन्दर मनोभावनाएं की अभिव्यक्ति की हैं। उनकी आत्मा ने प्रियतम के समान ही प्रिय के लिए प्रतीक्षा की है :

''बहुत दिनन की जोवती, बाट तिहारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नहिं विश्रामं''

कबीर की विरह वेदना इतनी बढ़ गई है कि वह अवर्णनीय हो गई है। अतः उसे तो केवल दो ही जान सकते है, एक तो वह जिसके वियोग में यह हालत है दूसरा वह जो इस हालत को भोग रहा है :

चोट सताणी विरह की, सब तन ज़र–ज़र होई।
मारणहारा जाणि है, कै जिहिं लागी सोई।।

इसके उपरान्त भी विरहिणी (आत्मा) प्रिय (परमात्मा) के लिए अपने शरीर को ना जाने कौन कौन से कष्ट देने को तत्पर है। वह अपने शरीर को दीपक कर अपने प्राणों की वर्तिका बना और शरीर का रक्त भी उसमें तेल के रूप में डाल प्रियतम का मुख देखने के लिए आतुर है :

इस तन का दीबा करौं, बाती में तयूं जीव।
तौं ही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देखें पीव।।

मगर विरहिणी रोवे भी कहां तक। आखिर उसकी भी तो कोई शक्ति सीमा है। यदि वह मौन रहे तो प्रियतम समझेंगे कि अब तो इसकी वृत्ति संसार में उलझ गई है। इस तरह मन ही मन घुन के समान पिसने के अतिरिक्त चारा भी क्या है।

जो रोऊ तो बल घटै, हंसो तो राम रिसाई।
मन ही भाद्रि विसूणां, ज्यूं धुण काठहि खाई।।

आत्मा को इस बात का अहसास है कि प्रियतम को पाने के लिए रोना ही पड़ेगा क्योंकि प्रिय को पाने के लिए रोना पड़ता है। हंस–हंस कर प्रियतम का सुख प्राप्त नहीं हो सकता :

हंस हंस कंत न पाइया, जिन पाइया तिनि रोही।
जे हांस ही कंत मिलै, तो नहीं सुहागिन कोई।

ब्रह्म स्वरूप का वर्णन

कबीर निर्गुण काव्य धारा के प्रर्वत्तक माने जाते हैं। तो निसन्देह उनका ब्रह्म निराकार था। परन्तु फिर भी उन्होंने ब्रह्म के स्वरूप को अभिव्यक्त करने की पूरी–पूरी कोशिश की है। कबीर ने अपने बह्म के लिए राम शब्द का प्रयोग अधिक किया है। सम्भवतः उन्हें ये नाम बाकी नामों की अपेक्षा अधिक प्रिय रहा हो। कबीर अपने 'राम' के बारे में स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

ना दसरथ धरि औतारि आवा।
ना लंका का राव सतावा।।
न वो ग्वालन के संग फिरिया।
गोबरधन लै कर कर धरिया।।
बाबन होय नहीं बलि छलिया धरनी वेद लेन अधरिया।।[1]

अपने राम के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहते हैं –

''निर्गुण राम जपहु रे भाई,
अवगति की गति लखी न जाई।''[2]

कबीर के राम निर्गुण होकर भी सर्वत्रा मूर्त रहा है। यह उसकी विलक्षणता है। उसका नाप तोल कुछ भी तो सम्भव नहीं।

''अवरन एक सकल अविनासी, घटि घटि आप रहैं।
तोल ना मोल, माप कछू नाहिं गिनती ज्ञान न होई।''[3]

कबीर के राम तर्क बुद्धि से परे है, जो इसे तर्क से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं उनकी बुद्धि मोटी है।

''कहै कबीर तरक दुई साधे तिनकी मति है मोटी।''

कबीर के ब्रह्म ज्योति स्वरूप हैं। उनके तेज़ का न तो अनुमान किया जा सकता है न ही वर्णन।

पार ब्रह्म के तेज़ का कैसा है उनमान।
कहिबे को शोभा नहीं, देख्या ही परवान।।[4]

ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए कबीर जी कहते हैं कि वह तो उस गूंगे के गुड़ के समान है जिसका मात्रा वह अनुभव कर सकता है मगर बोल कर उस माधुर्य का वर्णन नहीं कर सकता –

''कहै कबीर घट ही मन माना,
गूंगे का गुड़ गूंगे जाना।''

कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा के मध्य सिर्फ पति–पत्नी का ही सम्बन्ध नहीं माना बल्कि मां–बच्चे, गुलाम–साहब, पिता–पुत्रा आदि का सम्बन्ध भी स्थापित किया है। कबीर ने भावावेश में भगवान् को विभिन्न रूपों का गुणगान किया है।

कला–पक्ष

भाषा केवल शब्दों का ही समूह नहीं है, वरन् इसमें प्रभाव उत्पन्न करने वाली दूसरी शब्द शक्तियां भी हैं। किसी बात को कह देना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि उस बात को अच्छी शैली में प्रस्तुत करना भी

आवश्यक होता है। कबीर जी ने भी बहुत कुछ कहा और कहने के लिए उन्होंने जो शैली अपनाई वो भी, प्रशंसनीय है। यहां हम कबीर के काव्य में कला पक्ष पर विचार करेंगे :

1. काव्य गुण

कबीर के काव्य में ओज, प्रसाद, माधुर्य तीनों गुणों का संगम है। जहां कबीर ने अपनी ओजपूर्ण तिलमिला देने वाली उक्तियां कहीं उन्हें सुनकर वे तिलमिला उठे जिनके लिए वो उक्तियां कहीं गई :

''जो तू ब्राह्मणी जाया,
आन बाट है क्यों नहीं आया?''

x x x x x

''हिन्दू तुरक कहां ते आये किन रूह राह चलाई,
दिल में सोच विचार भवाये भिरत दोजख किन पाई।''

लेकिन कबीर काव्य में माधुर्य गुण के भी अत्यन्त उदाहरण मौजूद है। जहां उन्होंने जीवात्मा को परमात्मा के मिलन, विरह इत्यादि का वर्णन किया है, वहां उनका माधुर्य देखते ही बनता है।

''मोरे घर आयो राजा राम भरतार।
तन रति करि मैं मन रति करिहौ, पांचो तन्त्रा बराती
राम देव मोहे ब्याहन आये, मैं जोबन मदमाती।''

जहां प्रसाद गुण का सवाल है तो कबीर समस्त काव्य ही प्रसाद गुण से ओत–प्रोत है। इसी प्रसाद गुण के कारण ही वह जन–मानस पर अपना अधिकार किये हुए हैं यथा :

कबीर कहता जान हूं, सुणता है सब कोई,
राम कहै भला होगा, नहीं तर भला न होई।

जिस समय कबीर ने उस काव्य की रचना की उस समय समस्त योगपरक पारिभाषिक शब्द जिनसे आज हम अपरिचित है जनता को ज्ञात थे। सिद्धों नाथों आदि ने अपने प्रचार से योगसाधना को साधकों के लिए तो सुलभ बनाया था ही, साथ ही सामान्य जनता भी उसकी शब्दावली आदि से अपरिचित नहीं थी। इस समय समाज में चमत्कार रूप से बात को कहने का प्रचार चल पड़ा था। कबीर ने भी उस परम तत्व का वर्णन कुछ स्थानों रूपकों ओर प्रतीकों द्वारा किया था, किन्तु ये समस्त स्थल अपवाद स्वरूप हैं अन्यथा सर्वत्रा कबीर–काव्य में प्रसाद गुण विद्यमान् हैं।

2. ज्ञान, भावना और कल्पना

इन तीनों गुणों के साथ ही कबीर–काव्य में ज्ञान, भावना और कल्पना तीनों तत्वों का सुन्दर मिश्रण प्राप्त होता है। कबीर के काव्य में जो दोहे रहस्यवादी भावना को व्यक्त करते हैं उनमें ज्ञान की उच्च से उच्च वस्तु और निगूढ़ तत्व विद्यमान हैं। अद्वैत भावना से सम्बन्धित दोहे में भी ज्ञान ही ज्ञान भरा पड़ा है यथा :

''जल में कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी
फूटा कुंभ जल जलहि सामना, इह तत कथ्यौग्यानी।।''

इसी प्रकार :

''लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।''

कल्पना तत्व भी कबीर के रूपकों, प्रतीकों आदि में प्रकट हुआ है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर की कल्पना उच्च कोटि की है :

''त्रिासना नै लोभ लहरी, काम क्रोध नीरा।
मद–मच्छर कछ मछ हरीख सोक तीरा।
कामनी अरू कनक भंबर धोये बहु बीरा।
जन कबीर नवका हरि खेबट गुरू कीरा।।''

इस तरह, ज्ञान, भावना एवम कल्पना के मिश्रण से उनका काव्य प्रत्येक कोटि के पाठक की मानसिक, परितुष्टि कर उसकी तृष्णा को शान्त करता है।

पाश्चात्य विद्वान् मिल्टन के मतानुसार काव्य में तीन गुण अवश्य होने चाहिए – 1ण सादगी 2ण असलीयत 3ण जोश। ये सभी हमें कबीर काव्य में प्राप्त होते हैं। सादगी, असलीयत एवं जोश–कबीर के काव्य में इन तीनों गुणों की प्रस्थापना के विरोध में कोई तर्क नहीं रखा जा सकता इसका उदाहरण दर्शनीय है :

''आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जीऊंगा।
गुरू के सबद में मैं, रमि रमि रहूंगा।।''

3. कवि समय

निसन्देह कविता करना कबीर का लक्ष्य नहीं रहा। परन्तु काव्य की समृद्ध परम्पराओं का दाय उनको मिला था। डॉ. गुलाब राय इस बारे में अपना मत प्रस्तुत करते हुए करते हैं – वे एक सिद्ध कवि की भांति काव्य परम्पराओं कवि समयों आदि से परिचित थे। साहित्य की परम्परागत भाव–सम्पत्ति का दाय उनको प्रचुर मात्राा में प्राप्त हुआ था। तभी तो उनमें सूर, तुलसी आदि सहकवियों के साथ भाव–साम्य के दर्शन होते हैं। हंस के नीर–क्षीर विवेक की बात को कबीर और तुलसी ने समान रूप से अपनाया है –

''हंसा बक एक रंग लखि चरैं एक ही ताल।
छीर–नीर वे जानिए बक उघरै तेहि काल।।

तुलसी जी ने भी इस कवि समय का उपयोग करते हुए लिखा है :

चरन चोंच लोचन रंगी चलौ मराली चाल।
क्षीर–नीर विवरन समय बक उघरत तोहि काल।।''

इसी तरह सेमल का फूल संसार की निस्सारता का प्रतीक माना गया है। इसका प्रयोग भी कबीर और सूर दोनों ने बड़ी मार्मिकता से उपयोग किया है। कबीर दास जी कहते हैं –

''सेमर सुवना सेइया दुई ढेढ़ी की आस।
ढेढ़ी फूटी चटांक दे सुवना चला निरास।।''

और सूरदास जी लिखते हैं –

रे मन छाड़ विषय को रचिवो।
तू कद सुवा होत सेमर कौ अन्तिहि कपट न बीधवौ।।

4. संस्कृत विचार–परम्परा

कबीर ने संस्कृत विचार–परम्परा को कुछ हद तक अपनाया है – 'भृंग ज्यों कीट को पलटि भृंग कियो, में बेदान्त के 'कटु भृंग न्याय' की झलक है और 'हे साधु संसार में कमला जल माहीं में 'पद्मपत्रीाभिवाम्भसि' की छाया है। 'सब बन चन्दन नांहि सुरों का दल नाहि' में उलट–फेर दिखाई पड़ता है।

यथा :– ''सब धरती कागद करूं–लेखन सब बन राय।
सात समुद की मसि करूं, गुरू गुण लिख ना जाय।।''

संस्कृत :– विचार परंपरा से ही प्रभावित।

एक और उदाहरण :

ज्यूं कामी कौ काम पियारा,
ज्यूं प्यासे कूं नीर रे।
मैं कोई ऐसा पर उपगारी,
हरि मूंक है सुनाई रे।

5. उलटबासियां

'उल्ट' का अर्थ है उल्टी हुई, 'उल्टबासी' का अर्थ हुआ 'उल्टी हुई उक्ति'। कबीर के काव्य में अनेक उलटबासियां मिल जाती हैं, मस्ती की मौज में ऊंचा उठकर कबीर ने अपने आत्मपरक आध्यात्म चिन्तन से जिस आलौकिक अगम्य, निराकार ज्योति–स्वरूप ब्रह्म के दर्शन किये हैं उसे सामान्य भाषा में व्यक्त करना सम्भव नहीं। तो इसलिए उन्होंने उलटबासियों का सहारा लेकर उस परम सत्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है यथा :

''बरसै कम्बल, भीगे पानी'' मगर कम्बल का काम भीगना और पानी का काम बरसना होता है। इस प्रकार की कुछ अन्य उक्तियां :

बैल बियाअल गविया बांझै।

x x x x x

नाव बीच नदिया डूबी जाय।

कबीर की उल्टबासियों में अद्भुत रहस्य और ज्ञान का अमित रोष पड़ा हैं।

6. प्रतीकों का प्रयोग

कविता करना कबीर का लक्ष्य न रहा हो। किन्तु उनकी वाणी में काव्य की उच्चतम भूमि प्राप्त होती है। जिस ब्रह्म के दर्शन उन्होंने किये उस आनन्द को अपनी परिधि में समेट कर नहीं रख सकते, उनकी वाणी प्रतीकों और रूपकों का आश्रय लेकर उस आनन्द को व्यक्त करती है।

कबीर ने बहुत सारे प्रतीकों का आश्रयग्रहण किया जैसे उन्होंने भक्ति के दाम्पत्य प्रतीक के साथ–साथ वात्सलयात्मक प्रतीकों का भी आश्रय किया – दाम्पत्य भावना की सुन्दर उदाहरण :

''मोरे घर आये राजा राम भरतार।
तन रति करि मैं, मन रति करिहौ, पांचों तख्त बराती।
राम देव मोहे ब्याहन आये, मैं जोबन मदमाती।।''

पिता–पुत्रा के प्रतीक द्वारा भी कबीर ने अपनी भावनाएं व्यक्त की है। जैसे –

बाय राम बिनती भोरी
तुम सौ प्रकट लोगन सिउ चोरी।।

मगर पिता–पुत्रा प्रतीक इतना प्रयुक्त नहीं हुआ जितना कि माता–पुत्रा प्रतीक। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि बालक का मां से जितना लगाव होता हैं उतना पिता से नहीं :

''हरि जननी मैं बालक तोरा।
काहे न औगुण बकसहु मोरा।
सुत अपराध करै दिन केते।
जननी के चित रहे न तेते।
करि गहि केस करे धाता, तउ न मेल उतारे माता।
कहै कबीर एक बुधि विचारी, बालक दुखी दुखी महतार।''

दास्य भाव की उभिव्यक्ति के लिए कुत्ते के प्रतीक पर उतर आये :– यथा

''कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाऊं।
गले राम की जेवड़ी, जिति खैंचे तित जाऊं।''

इस तरह कबीर काव्य में प्रतीक का खूब प्रयोग हुआ है।

7. पारिभाषिक शब्दावली

कबीर ने स्थान–स्थान पर अपनी रचनाओं में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो गहन अर्थ की और संकेत करते हैं। ऐसे शब्द सिद्ध साहित्य व योग, साहित्य में से गृहित किये गये हैं। कबीर ने इन शब्दों की विधिवत शिक्षा ग्रहण नहीं की थी अपितु सत्संगति से इन्हें जाना था। इस कारण कई स्थानों पर वे शब्दों का प्रयोग परम्परा से हटकर भी कर जाते हैं। उदाहरण के लिए कुछ शब्द ये हैं 'अनहद नाद, अमृत, खसम, निरंजन, गगन, शून्य, नाथ, बिन्दू, कुण्डलियां, अवधूत इत्यादि उन्होंने इन शब्दों को दोहों में प्रयुक्त किया है यथा :–

गोब्य दे तू निरंजन तू निरंजन तू निरंजन रा।
तेरे रूप नांही मुद्रा नहीं माया।।

x x x x x

सहसज सुं नि नेहरी गगन मंडल सिरमौर।

x x x x x

अवधू नादै व्यंद गगन गाजै, सबद भनाहट बोलै।
अतरि गति नद्रि देखै नेड़ा, ढूंढता बन घन डोलै।।

8. भाषा

भाषा केवल शब्दों का ही समूह नहीं है वरन् इसमें प्रभाव उत्पन्न करने वाली दूसरी और भी अनेक शक्तियां है जैसे – शब्द, अलंकार, छन्द, गुण, मुहावरे आदि। कबीर के भाषा के स्वरूप के अध्ययन को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है :–

1द्ध शब्द प्रयोग 2द्ध अलंकार–योजना 3द्ध छंद योजना 4द्ध भाषा के गुण 5द्ध मुहावरे लोकोक्तियां।

1. शब्द प्रयोग

निःसन्देह भाषा शब्दों से बनती है, किन्तु शब्द की वास्तविक महत्ता उसके अर्थ पर निर्भर हैं, इसलिए किसी कवि का शब्द प्रयोग जितना अच्छा होगा, उसकी भाषा में उतनी ही अभिव्यंजना शक्ति होगी। शब्द चार प्रकार के होते हैं – तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी।

कबीर काव्य में तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है, यद्यपि कबीर का इन शब्दों का प्रयोग की ओर विशेष आग्रह नहीं था, क्योंकि वे साहित्यिक कवि नहीं थे जन कवि थे। तत्सम शब्दों से युक्त कबीर काव्य कुछ उदाहरणः

1. सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत ऊंघड़िया, अनंत दिखावन हार।।
2. जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, इह तत कथौ ग्यानी।।

इन दोनों में महिमा, अजंल, लोचन, कुंभ जल इत्यादि तत्सम शब्द हैं।

तदभव् :– शब्दों का प्रयोग कबीर–काव्य में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि कबीर उन व्यक्तियों में से जिन्हें मसि, कागद छूने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। दूसरा कारण यह है कि कबीर जन कवि थे। इसलिए उन्होंने अपने काव्य में उन शब्दों का प्रयोग किया जो साधारण बोलचाल में प्रयुक्त होते थे। यथाः–

कबीर यह जग अंधला, जैसी अंधी गाई।
बछड़ा था सो मरि गया, अभी चाम चटाई।।

यहां गाय, बछड़ा, चाम, यह शब्द तदभव् है कभी–कभी तो कबीर ने शब्दों को इतना विकृत कर दिया कि उसके मूल रूप तक पहुंचना आसान नहीं।

देशज :– शब्दों का प्रयोग भी कबीर–काव्य में हुआ इसका कारण यह था कि कबीर पर्यटनशील स्वभाव के थे, इसलिए उन्होंने देशज शब्दों का प्रयोग भी किया यथा :–

''माटी कहै कुम्हार सूं, तू क्यौं रूंदै मोय।
इक दिन ऐसा आयेगा, मैं रूदूंगी तोय।।''

इस दोहे में सूं, रूंदै, मोय, तोय, मोटी इत्यादि देशज शब्द हैं। इसके अतिरिक्त कबीर काव्य में राजस्थान, पंजाब के शब्द भी मिलते है यथा :–

चोट सताणी बिरह की, सब तन पर जर जर होय।
मारजहारा जानि है, कै जिहि लागी सोय।।

x x x x x

विदेशी :– कबीर काव्य में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के कारण फारसी और अरबी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ। कहीं–कहीं तो पूरी की पूरी शब्दावली फारसी और अरबी शब्दों से बनी हुई है यथा :–

''खालिक हरि कहीं दरहाल।
पंजर जसि करद चुसमन, मुरद करि पैमाल।।
भिस्त हुस्को दो जगां, दुंदर दराज दिवाल।
पहनायैं परदा ईन आतस, जहर जंगया जाल।।''

9. अलंकार योजना

कबीर काव्य में अलंकारों का प्रयोग जान बूझकर नहीं किया गया है। वो तो उनकी वाणी के आवेग से स्वतः ही इस प्रकार बिखर गये हैं जिस प्रकार की तरंगों की थिरकनों से रत्न राशि बिखर जाती हैं। अलंकारों को मुख्यता तीन वर्गों में विभाजित किया गया है – शब्दालंकार, अर्थालंकार और मिश्रित अलंकार। कबीर काव्य में तीनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है यथा :–

''सतगुरू सवान को सगा, सोधि सई न दाति।
हरि जी सवान को हितू, हरिजन सई न जाति।।''

इस दोहे में अनुप्रास और यमक शब्दालंकारों का प्रयोग हुआ है। और :–

पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जाति।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात।।

इस दोहे में उपमा और दृष्टांत अर्थालंकार का प्रयोग है।

10. छंद

कबीर ने अधिकतर दोहा छन्द का प्रयोग किया है। इस छन्द के प्रयोग में वे इतने सफल रहे है कि जो बात बिहारी के विषय में की जाती है। 'गागर में सागर भरने की' वही बात हम कबीर जी के विषय में भी कह सकते हैं। कबीर का एक–एक दोहा अपने में भाव–सागर को समाहित किये हुए हैं। यथा :–

''चंदन की कुटकी भली, नां बबूर की अबराऊं।
वैश्नों की छपरी भली, ना साकत का बड़गाऊं।।''

इस दोहे में अनेक भाव सम्मिश्रण हैं। दोहा छन्द के अतिरिक्त कबीर ने अपने पदों में गौड़ी, रामकली, आसावरी, बसंत कल्याण आदि रागों का प्रयोग भी किया है।

11. मुहावरे और लोकोक्तियां

मुहावरे और लोकोक्तियां के प्रयोग से भाषा प्रभावशाली बनती है। इसके प्रयोग से विचारों में शक्ति आती है और उन विचारों का प्रभाव अधिक होता है। कबीर जी ने यथावसर मुहावरों और लोकोक्तियों का समुचित प्रयोग किया यथा :–

''पांव कुल्हाड़ी मारीय, मूरख अपणे हाथ।''

यहां पर अपने ही हाथ से अपने पैर कुल्हाड़ी मारने का मुहावरा प्रभावोत्पादक रीति से प्रयुक्त हुआ है :– और

''आछे दिन पाछे गये, हरि सये की न हेत।
अब पछताय होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत।''

इसमें लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है।

निष्कर्षत :– उपर्युक्त – विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कबीर के काव्य में सभी गुण मिलते हैं जो किसी काव्य की श्रेष्ठता को बनाये रखने के लिए आवश्यक होते हैं। कबीर काव्य में भाव पक्ष तो सबल है ही मगर कला पक्ष भी कम सौन्दर्यपूर्ण नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बेशक कविता करना कबीर का लक्ष्य न रहा हो मगर उनके काव्य में उच्चतम कविता के गुण प्राप्त होते हैं, रस उनके काव्य की रस गगरी से छलक–छलक पड़ता है।

1.3.4.1 स्वयं जांच अभ्यास

1ण	कबीर की भाषा पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
	.....
	.....
	.....

1.3.5 सारांश :

कबीर को निर्गुण भक्ति काव्यधारा का प्रवर्त्तक माना जाता है। उनके जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में मतभेद होते हुए भी उनका जन्म सम्वत् 1455 को और मृत्यु 1575 को मानी जाती है। कबीर जी के व्यक्तित्व के पीछे उस समय का वातावरण का विशेष स्थान रहा है। उनके व्यक्तित्व का विशेष गुण उनका स्पष्टवादी स्वभाव था। पथभ्रष्ट जनता को सही मार्ग दर्शन के लिए ऐसा आचरण ही उन्हें अधिक उपयुक्त लगा। उन्होंने तत्कालीन शासन को चुनौती भी दी, जिसके आधीनस्थ पूरी जनता का अस्तित्व ही लुप्त हो चला था। उन्होंने तीर्थाटन, मूर्तिपूजा और बाह्याड्म्बर का खण्डन किया। यद्यपि सुधार करना या नेतागीरी की प्रवृति कबीर में नहीं थी, किन्तु वे समाज के कूड़ा–कर्कट या कुरूप को निकाल फेंकना चाहते थे।

कबीर काव्य को भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से परखने पर स्पष्ट हो जाता है कि इनके काव्य में वे सभी विशेषताएं विद्यमान हैं, जिनके होने से किसी काव्य को श्रेष्ठ काव्य घोषित किया जा सकता है। कबीर काव्य का भावपक्ष तो उच्चकोटि का है ही, साथ ही इनका कलापक्ष भी कम सौन्दर्यपूर्ण नहीं है। आदि ग्रन्थ, बीजक और कबीर ग्रन्थावली ग्रन्थों में उनके काव्य के सर्वोत्म गुण परिलक्षित होते हैं। जहां एक ओर वे विरह भावों को बड़ी खुबसूरती से प्रदर्शित करते हैं, वही उन्होंने अपने प्रिय (परमात्मा) के

मिलन चित्रा भी बड़े ही मनमोहक ढंग से प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने ब्रह्म के निराकार रूप की अराधना की है। कबीर के काव्य में ओज, प्रसाद, माधुर्य तीनों गुणों का संगम है। इन तीन गुणों के साथ–साथ कबीर–काव्य में ज्ञान, भावना और कल्पना का भी सुंदर सम्मिश्रण मिलता है। इनकी भाषा में अनेक भाषाओं और बोलियों का मिला जुला प्रभाव दिखाई पड़ता है। अलंकार–योजना, छंद योजना, मुहावरे–लोकोक्तियों और उलटबांसियों के प्रयोग ने तो इनकी भाषा को और अधिक प्रभावशाली बना दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि कबीर का लक्ष्य कविता करना नहीं था, किन्तु फिर भी उनके काव्य में उच्चतम कविता के गुण प्राप्त होते हैं।

1.3.6 शब्दावली

1.	खिचड़ी	–	मिश्रित
2.	विशेष	–	उत्तम
3.	संत	–	साधु
4.	ईश्वर	–	परमात्मा
5.	वर्ग	–	समूह

1.3.7 प्रश्नावली

1. कबीर का जन्म कब और कहां हुआ?
2. कबीर का पालन–पोषण किसने किया?
3. कबीर के गुरु का नाम लिखिए।
4. कबीर की रचनाओं के नाम लिखिए।
5. कबीरकालीन परिस्थितियों पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
6. कबीर के समाज सुधारक रूप पर टिप्पणी करें।
7. कबीर की भाषा विषय पर अपने विचार प्रकट करें।
8. कबीर की काव्यगत विशेषताओं पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
9. कबीर के रहस्यवाद पर प्रकाश डालें।
10. कबीर की विरह भावना पर चर्चा करें।
11. कबीर के ब्रह्म स्वरूप का वर्णन करें।
12. निर्गुण भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं?

1.3.8 सहायक पुस्तकें :

1. कबीर ग्रन्थावली सटीक – सं. डॉ. श्यामसुन्दर दास
2. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय – पीताम्बर दत बडथ्वाल
3. कबीर का रहस्यवाद – डॉ. रामकुमार वर्मा
4. कबीर – हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
5. कबीर ग्रन्थावली – डॉ. पुष्पपाल सिंह

Updated on May 2023

पाठ संख्याः 1.4

लेखिका –डॉ0 कुलदीप कौर

कबीर : एक समाज सुधारक

इकाई की रूपरेखा :

1.4.0 उद्देश्य

1.4.1 प्रस्तावना

1.4.2 कबीर : युगीन परिस्थितियां

1.4.3 कबीर : एक समाज सुधारक

1.4.3.1 हिंसा का विरोध

1.4.3.2 जाति पाति का विरोध

1.4.3.3 मूर्ति पूजा का खंडन

1.4.3.4 पाखंडवाद का विरोध

1.4.3.5 छुआछूत का विरोध

1.4.3.6 साम्प्रदायिकता का विरोध

1.4.3.7 निम्न वर्ग के समर्थक

1.4.3.8 धार्मिक पाखंडों का खंडन

1.4.3.9 लोक कल्याण की भावना

1.4.3.10 प्रेमतत्व की प्रधानता

1.4.3.11 ज्ञान, कर्म और परिश्रम की महानता

1.4.3.12 निष्कर्ष

1.4.3.13 स्वयं जांच अभ्यास

1.4.4 सारांश

1.4.5 शब्दावली

1.4.6 प्रश्नावली

1.4.7 सहायक पुस्तकें

1.4.0 उद्देश्य :

एक समाज सुधारक होने के साथ–साथ कबीरदास एक महान कवि भी थे। उन्होंने समाज में प्रचलित ब्राह्याडम्बरों, अंधविश्वासों और रूढ़ियों पर व्यंग्य कर सम्पूर्ण मानव जाति का मार्ग दर्शन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र निम्न उद्देश्यों को जानने में सक्षम होंगे।

1. कबीर के समाज सम्बन्धी क्या विचार हैं।
2. समाज में प्रचलित बुराईयों का उन्होंने कैसे खंडन किया।
3. हिन्दूओं और मुसलमानों में प्रफुल्लित होते भेद भाव का कैसे खंडन किया।?

1.4.1 प्रस्तावना :

कबीर एक संत, कवि, समाज सुधारक, भक्त और फकीर थे। उन्होंने समाज में व्याप्त अंध विश्वासों और रूढ़ियों पर करारा प्रहार कर समाज का मार्गदर्शन किया। उन्होंने जाति पाति के आधार पर ऊँच नीच का खंडन कर मानव जाति को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया। एक महान क्रान्तिकारी और समाज सुधारक होने के कारण उन्होंने समाज में व्याप्त अंध विश्वासों, कुरीतियों व बुराइयों का खंडन कर उन्हें दूर करने का प्रयास किया।

1.4.2 कबीर : युगीन परिस्थितियां

भारत पर सं. 1263 से 1469 तक गुलाम, खिलजी और तुगलक वंश ने शासन किया था और कबीर का समय तुगलक और लोधी वंश के मध्य पड़ता है। इन विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक व्यवस्था में उथल–पुथल मचा दी थी। विदेशी आक्रमणकारियों ने भारतीय हिन्दू लोगों को दण्ड देकर बहुदेववाद और मूर्ति पूजा का विरोध कर भारत को एक इस्लामिक राज्य बनाना शुरू कर दिया क्योंकि यह विदेशी शासक इस्लाम के कट्टर समर्थक थे। दूसरी तरफ हिन्दू राजे रजवाड़े भी विदेशी इस्लामी शासकों से भयभीत रहते थे। यह देशी राजे शासन की तरफ ध्यान न देकर भोग–विलास में मग्न रहते थे और इनकी भोग विलास की जरूरतों को पूरा करने के लिए साधारण जनता से पैसा लिया जाता था। जिसके कारण निम्न वर्ग का मनमाना शोषण उच्चवर्ग द्वारा किया जा रहा था। हिन्दू मुस्लिम धर्मों के अतिरिक्त

तत्कालीन समय में बौद्ध धर्म, जैन, शैव एवं वैष्णव धर्म भी प्रचलित थे। जो विभिन्न प्रकार की शाखाओं में बंटे हुए थे और इन धर्मों के ठेकेदार जनता का सही मार्गदर्शन न कर आपस में लड़ने झगड़ने में व्यस्त रहते थे। सभी अपने–अपने धर्म के कट्टर थे। इस धार्मिक कट्टरता के भीतर मनमाने रूप से शासकों द्वारा शासन किया जा रहा था जिसमें आम जनता को बुरी तरह हो रहा था और जनता के पास इस शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने की शक्ति नहीं थी।

1.4.3 कबीर : एक समाज सुधारक

हिन्दी साहित्य की भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा के सन्त कवियों में कबीरदास का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। उनके काव्य में भक्ति, रहस्यभावना और समाज सुधार का मिश्रण पाया जाता है। यद्यपि कबीर का काव्य रचना करने का मुख्य लक्ष्य अध्यात्म विचार था, समाज सुधार करना नहीं, फिर भी उनकी वाणी में उस समय के समाज का यथार्थ रूप में चित्रण हुआ है।

कबीरदास एक महान कवि होने के साथ–साथ एक समाज सुधारक थे। उन्हें समाज सुधारक पहले माना जाता है, कवि और भक्त बाद में। उस समय में समाज में जो अंधविश्वास ब्राह्याडम्बर और रूढ़ियां प्रचलित थीं। कबीरदास ने उन सब पर करारा व्यंग्य किया है। उस समय जाति–पाति, ऊँच–नीच के आधार पर समाज के छुआ–छूत का बोलबाला था, कबीरदास ने उन सबका खंडन कर कहा कि सम्पूर्ण मानव जाति को एक ही ईश्वर ने पैदा किया है और इसलिए कोई भी ऊँचा या नीचा नहीं है। उनकी धर्म तथा आचार व्यवहार से सम्बन्धित पाखण्डों में कोई आस्था नहीं थी इसलिए उन्होंने इस सभी को ढोंग मानकर उनकी आलोचना की थी। उन्होंने उन सभी बुराइयों का विरोध किया जो भारतीय लोगों को बिखराव की ओर लेकर जा रही थी। कबीरदास ने हिन्दू मुसलमानों सभी को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया।

1.4.3.1 हिंसा का विरोध

कबीरदास का अहिंसा पर विश्वास था इसलिए वह हिंसा का विरोध करते हैं। उन्होंने मांस खाने वालों को फटकार लगाई है और उन्हें चेतावनी दी है कि उन्होंने जो पशु–पक्षियों की हत्याएं की है उनका हिसाब उन्हें ईश्वर को अवश्य देना पड़ेगा। कबीरदास का जीवों को मारकर खाने वाले लोगों से नफरत है। कबीरदास कहते हैं –

''बकरी पाती खात है, ताकि काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है, तिनको कौन हवाल''।

अर्थात् बकरी तो सिर्फ हरे पत्ते खाती है फिर भी उसकी खाल उतार दी जाती है, सोच कर देखिए जो आदमी बकरी को खाता है उसका क्या हाल होगा।

''दिन को रोजा रखत है, रात हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी कैसे खुसी खुदाय।''

1.4.3.2 जाति पाति का विरोध

कबीरदास ने उस समय के समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था और जाति पाति का विरोध किया। वह कहते थे कि सभी मनुष्य उस ईश्वर की संतान है इसलिए जाति पाति का भेदभाव अनर्थ है।

''जात पात पूछे न कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई।''

1.4.3.3 मूर्ति पूजा का खंडन

कबीर मूर्ति पूजा के विरोधी थे। इसलिए उन्होंने हिन्दूओं की मूर्ति पूजा का खंडन किया था। उनके अनुसार परमात्मा को कोई आकार नहीं होता। इसलिए उसकी हम मूर्ति कैसे बना सकते हैं। इसलिए वह मूर्ति पूजा करने वाले हिन्दूओं को फटकार लगाते हुए कहते हैं –

''पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार,
ताते यह चक्की भली, पीस खाय संसार''।

अर्थात् यदि पत्थर की पूजा करने से भगवान मिल जाते हैं तो मैं उस पहाड़ की पूजा कर लेता हूँ। वह कहते हैं कि घर की चक्की को कोई नहीं पूजता जिससे अनाज को पीसकर सभी लोग अपना पेट भरते हैं।

1.4.3.4 पाखंडवाद का विरोध

कबीर एक समाज सुधारक थे, इसलिए वह समाज में सुधार लाना चाहते थे। जिस किसी भी धर्म में उन्होंने आडम्बरों को देखा उसका उन्होंने डटकर विरोध किया। उन्होंने हिन्दू मुसलमानों में व्याप्त पाखंडों की आलोचना करते हुए उन्हें सच्चे मानव धर्म को अपनाने के लिए प्रेरित किया।

''दिन भर रोजा रहत है, रात हनत दे गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुसी खुदाय।''

कबीर कहते हैं कि लोग दिन भर व्रत रखते हैं लेकिन रात को गाय को मारकर खाते हैं। मेरी समझ में यह नहीं आता कि यह कैसी खुशी है। कबीर उन लोगों पर भी व्यंग्य कसते हैं जो तिलक लगाते हैं और माला जपते हैं।

''माला तिलक लगाई के, भक्ति न आई हाथ
दाढ़ी मूंछ मुराय कै, चले दुनी के साथ
दाढ़ी मूंछ मुराय कै हुआ, घोटम घोट
मन को क्यों नहीं मूरिये, जामै भरीया खोट।''

यहाँ एक तरफ उन्होंने हिन्दूओं की मूर्ति पूजा, तिलक लगाना आदि पाखंडों का खंडन किया है। वहीं दूसरी तरफ मुसलमानों के नमाज, रोज़ा पर भी व्यंग्य किया है। इसी प्रकार कबीर ने मस्जिद में ऊँची आवाज़ देकर चिल्लाने वाले मुस्लिम समुदाय के मुल्ला को पाखंडी कहकर उसकी आलोचना की है। वह कहते हैं –

''कांकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई बनाए।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।''

इसी प्रकार उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में व्याप्त छुआछूत का विरोध किया है और वह कहते हैं कि –

''हिन्दू अपनी करे बड़ाई, गागर छुआन न देई
वेश्या के पायनतर सोवै, यह देखो हिन्दुआई।।''

1.4.3.5 छुआछूत का विरोध

कबीर का व्यक्तित्व क्रांतिकारी चेतना से युक्त था। उन्होंने हिन्दू मुसलमानों के बीच में जो जाति–पाति और धर्म के आधार पर छुआ–छूत की भावना फैली हुई थी उसका तीखा विरोध किया है। जाति–पाति के आधार पर समाज में जो भेदभाव होता था उसके वह कट्टर निंदक थे। वह कहते थे कि –

''जो तू बाभन बांभनी जाया, आन बाट है क्यों नहीं आया।''

इसी प्रकार उन्होंने मुसलमानों से भी प्रश्न किया है –

''जो तू तुरक तुरकिनी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया।''

1.4.3.6 साम्प्रदायिकता का विरोध

साम्प्रदायिकता का अर्थ होता है अपने धर्म को दूसरे के धर्म के मुकाबले ऊँचा व श्रेष्ठ उठाना। कबीरदास के समय हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपने–अपने धर्म को एक दूसरे से श्रेष्ठ और ऊँचा कहते थे। दोनों धर्मों के लोगों में कट्टरता विराजमान थी। कबीरदास ने दोनों धर्मों के बीच विराजमान कट्टरता को दूर करने की कोशिश की। वह इसका विरोध करते हुए कहते हैं –

''संतो देखहु जग बैराना,
हिन्दू कहे मोहि राम पियारा, तुरक कहै रहिमाना।
आपस में दोऊ, लरि–लरि गए,
मरम ने काहु जाना।''

अर्थात् सज्जनों (संतों) देखो कि यह संसार पागल हो गया है हिन्दू राम के भक्त हैं और तुर्कों को रहमान प्यारा है। दोनों आपस में लड़ झगड़ रहे हैं लेकिन इस सच्चाई को कोई नहीं जान पाया कि हम सभी एक ही परमात्मा की संतान हैं।

वह मानवीय एकता के पक्षधर थे, जिसमें राम रहीम एक हैं, धर्म एक है, हिन्दू और मुसलमान एक हैं। वह कहते हैं –

''हिन्दू तुर्क की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहै कबीर सुनो भई सन्तो, राम न कहेउ खुदाई।।''

1.4.3.7 निम्न वर्ग के समर्थक

कबीरदास कमजोर व निम्न जाति के लोगों का हमेशा समर्थन किया है। वह जाति–पाति और ऊँच–नीच के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने हमेशा घमण्डी और अहंकारी लोगों का विरोध किया। वह कहते हैं –

''दुर्बल को न सताईये, जाकि मोटी हाय।
मुई खाल की सांस लो, लोह भसम हो जाए।''

अर्थात् कबीरदास कहते हैं कि दुर्बल व गरीब लोगों को दुखी नहीं करना चाहिए क्योंकि अगर उनकी बद्दुआ लग गई तो वह सबको नष्ट कर देगी।

1.4.3.8 धार्मिक पाखंडों का खंडन

कबीर ने धार्मिक पाखंडों का खंडन किया है वह मानते हैं कि परमात्मा इस जगत के कण–कण में विराजमान है। हम एक पत्थर की मूर्ति बनाकर उसकी प्राप्ति नहीं कर सकते। उन्होंने सभी धर्मों में विराजमान धार्मिक पाखंडों की आलोचना कर मनुष्य को एक सच्चे मानव धर्म को अपनाने के लिए प्रेरित किया। हिन्दूओं के धार्मिक पाखंडों का विरोध करते हुए वह कहते हैं –

''पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार,
ताते यह चक्की भली, पीस खाय संसार''।

1.4.3.9 लोक कल्याण की भावना

कबीरदास समाज में भेदभाव दूर करने और सुधार लाने के लिए लोक मंगल की कामना करते हैं। उन्होंने सम्पूर्ण मनुष्य जाति को संकीर्ण विचारधारा को छोड़कर उच्च और आदर्श जीवन जीने का उपदेश दिया है। वह समाज को एक नई दिशा दिखाते हैं। जहां पर मनुष्य अपने स्वार्थ, अहंकार, भेदभाव को त्याग कर एक पवित्र आत्मा बन कर सबसे मिल जुलकर रह सकें। वह सम्पूर्ण मानव जाति को विनम्रता का संदेश देते हैं।

''शीलवन्त सबसे बड़ा, सर्व रतन की खानि।
तीन लोक की सम्पदा, रही सील में आनि।।''

1.4.3.10 प्रेमतत्व की प्रधानता : कबीरदास ने समाज में प्रचलित बुराईयों को दूर करने के लिए प्रेम की प्रधानता पर जोर दिया है। वह परमात्मा की भक्ति करने के लिए प्रेम को महत्व देते हुए कहते हैं कि सच्चा भक्त प्रेम के लिए सब कुछ बलिदान कर देने के लिए तैयार रहता है। वह कहते थे कि जिस मनुष्य के मन में प्रेम, दया और करुणा की भावना है वह ही सबसे बड़ा ज्ञानी है। पुस्तकें पढ़ लेने से कोई बड़ा विद्वान नहीं बन सकता। बहुत सारे लोग बड़ी–बड़ी किताबें पढ़ने पर भी इस संसार से मृत्यु के मुंह तक चले गए हैं। जो व्यक्ति प्यार के ढाई अक्षर अच्छी तरह पढ़ लेता है वही सच्चा ज्ञानी होता है। कबीरदास कहते हैं –

''पोथी पढ़–पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोइ
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।''

1.4.3.11 ज्ञान, कर्म और परिश्रम की महानता : कबीरदास संत होने के साथ–साथ एक महान उपदेशक भी थे। वह ऊंच–नीच, जाति–पाति के आधार पर मनुष्यों के बीच कोई भेद–भाव नहीं

मानते थे। वह कहते थे कि मनुष्य को उसका ज्ञान ही महान बनाता है। ज्ञान और कर्म के आधार पर ही मानव एक सच्चा मानव बनता है। किसी व्यक्ति को न तो उसका खानदान ऊँचा बनाता है और ना ही उसकी जाति–पाति बल्कि उसको उसके अच्छे कर्म ही महान् बनाते हैं। वह कहते हैं –

''जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिये ज्ञान
मोल करो तलवार का, पड़ा रहने दो म्यान।।''

अर्थात् कबीरदास कहते हैं कि किसी व्यक्ति को उसकी जाति, परिवार और खानदान के बारे में ना पूछ कर उसके ज्ञान को समझना चाहिए। जैसे कि तलवार का मूल्य होता है, न कि उसके म्यान का जिसके अन्दर तलवार रहती है। कबीरदास के अनुसार हमें व्यर्थ की चीज़ों और व्यर्थ के लोगों पर ध्यान नहीं देना चाहिए क्योंकि यह सब भौतिक पदार्थ हैं। इसीलिए हमें गूढ़ ज्ञान की तरफ ध्यान देना चाहिए।

कबीरदास परिश्रम करने वालों को बहुत महान मानते हैं। परिश्रम के माध्यम से वह समाज में फैली हुई गरीबी को दूर करना चाहते थे। वह कहते थे –

''कबीर उद्यम अवगुण को नहीं, जो करि जाने कोय।
उद्यम में आनन्द है, सांई सेती होय।।''

अर्थात् कबीरदास कहते थे कि परिश्रम में ही सफलता का आनन्द छिपा हुआ है। जो व्यक्ति परिश्रम करता है परमात्मा भी उसका साथ देता है। कबीर के अनुसार जो व्यक्ति मेहनत और परिश्रम नहीं करता वह अवगुणों से भरा रहता है क्योंकि जो व्यक्ति परिश्रम करता है उनको कबीर ने अपने परमात्मा के करीब बताया है। अपनी मेहनत और परिश्रम के बल पर ही हम अपने परमात्मा (ईश्वर) की प्राप्ति कर सकते हैं।

1.4.3.12 निष्कर्ष : अतः हम कह सकते हैं कि कबीरदास अपने समय और समाज में फैली बुराईयों के कट्टर निंदक थे। उनका समाज के प्रति दृष्टिकोण वैज्ञानिक था। वह समाज में फैले हर प्रकार के आडम्बरों और शोषण के खिलाफ थे। उन्होंने समाज को प्रेम की धारा और एक नई दिशा देने का प्रयत्न किया। समाज में फैली बुराईयों और आडम्बरों की कबीर ने कड़ी भर्त्सना की है। उन्होंने समाज में धर्म तथा जाति के नाम पर प्रचलित पाखण्डों, अंधविश्वासों, मूर्ति पूजा, पशु–बलि आदि रूढ़ियों का विरोध कर ज्ञान कर्म और परिश्रम को ही महान् बताया। उन्होंने समाज में एक नई धारा प्रेम की धारा का प्रवाह किया क्योंकि परिश्रम ही सफलता का आधार बिन्दु है। सफल परिश्रम

के द्वारा ही व्यक्ति समाज में अपनी प्रतिष्ठा कायम करता है। निः संदेह वह अपने युग के एक महान् दार्शनिक थे। वह एक महान् समाज सुधारक थे। उन्होंने जन–साधारण को धार्मिक व सामाजिक कुरीतियों के प्रति जागृत कर सरल जीवन व्यतीत करने की ओर प्रेरित किया। उसी के परिणामस्वरूप वह एक उच्चकोटि के समाज–सुधारक कहलाते हैं।

1.4.3.10 स्वयं जांच अभ्यास

1. कबीर के समाज सुधारक रूप पर टिप्पणी करें।

.....

.....

1.4.4 सारांश

कबीर एक कवि, सन्त और महान समाज सुधारक थे। उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से सम्पूर्ण समाज में फैली कुरीतियों का खंडन किया है। उन्होंने हिन्दूओं और मुसलमानों के बीच राम रहीम के नाम पर बनती खाई को पाटने की पूरी कोशिश की थी। वह एक क्रान्तिकारी थे जिन्होंने समाज में प्रचलित अंधविश्वासों, पाखंडों का खंडन कर समाज में प्रेम की नई धारा का प्रवाह किया। निं–संदेह वह महान समाज सुधारक थे।

1.4.5 शब्दावली

1. संकीर्ण – तंग
2. फटकार – झिड़की
3. खंडन – विरोध
4. समुदाय – समूह
5. कल्याण – शुभ, सुख

1.4.6 प्रश्नावली

1. कबीरदास ने समाज में प्रचलित किन बुराईयों का खंडन किया?
2. कबीरदास एक समाज सुधारक थे। सत्य है या असत्य टिप्पणी करें।
3. कबीरदास समाज सुधारक थे कवि बाद में उदाहरण देकर स्पष्ट करें।
4. मूर्ति पूजा सम्बन्धी कबीर के क्या विचार थे। उदाहरण देकर स्पष्ट करें।

1.4.7 सहायक पुस्तकें

1. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी
2. कबीर एक अनुशीलन – राम कुमार वर्मा
3. कबीर – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. कबीर का रहस्यवाद – डॉ. राम कुमार वर्मा
5. कबीर ग्रन्थावली – डॉ. पुष्पपाल सिंह

Mandatory Student Feedback Form

https://forms.gle/KS5CLhvpwrpgjwN98

Note: Students, kindly click this google form link, and fill this feedback form once.